1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI. No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-4, अंक-5, अप्रैल-मई 2021 ₹ 25/-

कला समय

कला, संस्कृति और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

श्रद्धांजलि...

स्व. श्रीमती सुंदरबाई श्रीवास

निधन : 10 अप्रैल, 2021

शोकाकुलः

श्री गोपीलाल श्रीवास जी की धर्मपत्नि एवं भँवरलाल श्रीवास, प्रधान संपादक - 'कला समय', बाबूलाल श्रीवास, स्व. जगदीश प्रसाद श्रीवास, लक्ष्मी सेन, उषा सेन एवं नरेन्द्र श्रीवास की पूज्य माताजी

एवं समस्त श्रीवास परिवार की ओर से दिवंगत आत्मा को भावभीनि श्रद्धांजलि

1998 से निरंतर प्रकाशित
RNI NO. MPHIN/2017/73838

कला समय पत्रिका अब वेबसाइट पर उपलब्ध
www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X
(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)
(वर्ष : 20+04=24) पूर्णांक-110
वर्ष-4, अंक-5, अप्रैल-मई-2021

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरू सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत

कला समय

कला, संस्कृति और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

संरक्षक
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
डॉ. महेन्द्र भानावत
पं. विजय शंकर मिश्र
श्यामसुंदर दुबे
पं. सुरेश तातेड़
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
डॉ. नारायण व्यास
ललित शर्मा
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल

सांस्कृतिक प्रतिनिधि
चेतना श्रीवास

वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

कानूनी सलाहकार
जयंत कुमार मेढ़े (एडवोकेट)

रेखांकन : मार्टिन जॉन

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

सलाहकार संपादक
डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा

सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग

उप संपादक
राहुल श्रीवास

संपादक मंडल
रामेश्वर शर्मा 'रामूभैया'
साहित्य
हरीश श्रीवास
कला
डॉ. मुक्ति पाराशर
संस्कृति
नरिन्दर कौर
प्रबंध

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	: 150/-	(व्यक्तिगत)
	: 175/-	(संस्थागत)
द्वैवार्षिक	: 300/-	(व्यक्तिगत)
	: 350/-	(संस्थागत)
चार वर्ष	: 500/-	(व्यक्तिगत)
	: 600/-	(संस्थागत)
आजीवन	: 5,000/-	(व्यक्तिगत)
(केवल 15 वर्षों के लिए)	: 6,000/-	(संस्थागत)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा कला समय के नाम से उक्त पते पर भेजे)

कार्यालय सम्पर्क :
संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण
पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस काम्पलेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) - 462016 से प्रकाशित। संपादक- भँवरलाल श्रीवास

इस अंक के हस्ताक्षर

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

कमल किशोर गोयनका

प्रो. अम्बिकादत्त शर्मा

डॉ. सुमन चौरे

डॉ. महेशचन्द्र शांडिल्य

रोहित प्रसाद पथिक

मधु तिवारी

इस बार

- संपादकीय / 5
  नारी सृष्टि का मूल है
- आलेख / 6
  इतिहास और साहित्य के अर्न्तसंबंध/ नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
- लोक में अद्वैत / 11
  आचार्य शंकर का अद्वैत वेदान्त: सार्वभौमिक एकात्मता का दर्शन/ अम्बिकादत्त शर्मा
- पुस्तक विमर्श / 14
  नवगीत-गीतकार यतीन्द्रनाथ 'राही' / डॉ. अर्पणा बादल
- आलेख
  धर्म, कला और नारी / मधु तिवारी /19
  जनजातीय गीतों में वृक्ष / डॉ. महेशचन्द्र शांडिल्य / 21
- शोध पत्र/ 24
  राजस्थान प्रदेश की कलामय 'कल्याण सुन्दर'' प्रतिमाएं / धर्मजीत कौर
- मध्यांतर / 26
  बांग्ला कवि शंख घोष की कविताएँ / अनुवाद : रोहित प्रसाद पथिक
  रममता वाजपेयी के गीत / 27
  यामिनी 'नयन' गुप्ता की कविताएँ/28
  किशन तिवारी की ग़ज़लें / 29
- आलेख
  निमाड़ का महालोकोत्सव गणगौर / डॉ. सुमन चौरे / 30
  हमारे समय की साहित्यिक पत्रकारिता / शशिभूषण द्विवेदी /33
  शब्दों का निराला बादशाह-सूर्यकांत त्रिपाठी निराला / राकेश शर्मा 'निशीथ'/35
  दलित आंदोलन के संदर्भ में रैदास की रचनात्मकता / डॉ. सेवाराम त्रिपाठी/39
  प्रेमचंद का अधूरा उपन्यास 'मंगल-सूत्र' और इसके 'मंगल-सूत्र' की तलाश/ कमल किशोर गोयनका / 42
- पुस्तक समीक्षा/ 48
  लोक और शास्त्र का अद्भुत समन्वय: गाँव-गाँव गोरख नगर-नगर नाथ / डॉ. विभा सिंह
- समवेत / 48
  डॉ. कपिल तिवारी को अवन्ती बाई साहित्य सम्मान
  डॉ. जुगनू को गुरु गोरखनाथ सम्मान
  आजादी का अमृत महोत्सव के अंतर्गत नृत्य उत्सव का आयोजन सम्पन्न

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888 | **आवरण चित्र** - संदीप राशिनकर | **अंतिम आवरण** - संदीप राशिनकर | **छायाचित्र** - मनीष सराठे, सुनील सेन | **रेखांकन** - मार्टिन जॉन | **सहयोग** - धन सिंह, लता श्रीवास, प्रेरणा पत्रिका एवं गीत गागर | **आवरण सज्जा** - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स, भोपाल

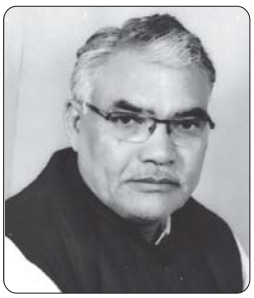

नारी सृष्टि का मूल है

''कोई दुःख मनुष्य के साहस से बड़ा नहीं
वही हारा जो लड़ा नहीं''

– कुँवर नारायण

महादेवी वर्मा के शब्दों में– ''पुरुष का जीवन संघर्ष से आरम्भ होता है और स्त्री का आत्मसमर्पण से। जीवन के कठोर संघर्ष में जो पुरुष विजयी प्रमाणित हुआ उसे स्त्री ने कोमल हाथों से जयमाल देकर स्निग्ध चितवन से अभिनन्दन करके और स्नेह प्रवण आत्मनिवेदन से अपने निकट पराजित बना डाला।''

यतीन्द्रनाथ राही वरिष्ठ गीतकार कहते है– नारी सृष्टि का मूल है, सृजन का आधार है। कभी बेटी, कभी भगिनी, कभी पत्नी और कभी माँ। अनेक रूपों में समाज की धुरी है नारी। समाज के सारे नाते–रिश्तों की केन्द्र होती है वह। प्यार ही प्यार, समर्पण ही समर्पण, प्यार और समर्पण की जीवित प्रतिमा है नारी। अनेक व्रत–त्योहारों के माध्यम से वह प्राण फूंकती है वह समाज में।

करवाचौथ का व्रत महज एक परम्परा निर्वाह नहीं है, संकल्प है, पति के कल्याण के लिए जीवन अर्पित करने का। सावित्री की कथा एक प्रतीक है, मृत्यु से लड़कर पुरुष की रक्षा करती नारी की अदम्य जीवट का। छलनी में से उतरती चन्द्र–किरणों में, पति के दर्शन, प्यार में छनकर पति का वह प्रकाश स्वरूप है, जो मन, हृदय और आत्मा को प्रकाशित करता हुआ नित्य जीवन के अंकुरण में सहयोगी बनता है। परंतु क्या यह व्रत केवल नारी के लिये ही है ? पुरुष क्या केवल केवल चंद्र–दर्शन कराने, आरती उतरवाने के लिए है ? नहीं, जब वह जल पात्र पत्नी के होंठों से लगाकर व्रत तोड़ने की मनुहार करता है, तब एक दायित्व भी ओढ़ता है, पत्नी के हर संकल्प में सहयोगी बनकर खड़े होने का, उसे शक्ति देने का अपनी क्षमता और कर्मों से इस योग्य बनने का कि वह पत्नी की पूजा का अधिकारी बना रहेगा। उसका मुख दर्शन चन्द्रमा का वह पवित्र दर्शन रहेगा जो हृदय में प्रकाश और अमृत रस का वर्षण कर सके। तभी धन्य होगा पुरुषत्व और धन्य होगा नारी का प्यार और समर्पण।

अकेले खड़े नारी और पुरुष, दोनों ही अर्द्धांग हैं। श्रीमती भाग्यशाली होने के लिये आवश्यक है कि उसके साथ कंधा मिलाकर खड़े हो–श्रीमती भाग्यशाली। नारी सशक्तिकरण केवल नारों से या नारी के एकांगी विकास से नहीं होने का। इस एकांगी विकास से नारी कहीं दुर्गा बन गई तो शिवत्व की छाती पर पद–प्रहार ही होना है। समाज के बहुमुखी विकास के लिए नारी और पुरुष दोनों को एक–दूसरे का पूरक बनकर विकसित होने में ही कल्याण है। क्षमताओं के विकास में समीष्ट के इस कल्याण भाव को हमें नहीं भुलाना है।

पुरुष–कर्म के साथ नारी शक्ति का समन्वय ही करवाचौथ का व्रत है। समाज की दो अतुलित शक्तियों के एकीकरण का यह व्रत है। प्यार की पावनता का यह व्रत है। प्यार और समर्पण भाव से नूतन सृजन की ओर अग्रसर होने का यह व्रत है, यह व्रत है भाग्यशाली बनने और बनाने का, यह व्रत है चांदनी के कोमल प्रकाश में, अंधेरों के तिरोभाव का। काश! हम इस व्रत को इस पावन भाव से स्वीकार पाएं। हम तो उलझे है थोथे भ्रामक मकड़जाल में। उन पोथियों में जो हर व्रत के साथ हमें और गहरी अंधी सुरंगों में ढकेल जाती है। इन अंधेरों से निकलने का प्रकाश हमें अपने ही भीतर जगाना होगा।

कोरोनाकाल में जो लोग हमें सदा के लिए छोड़ गए, उन सभी आत्माओं को नमन।

– भँवरलाल श्रीवास

आलेख

इतिहास और साहित्य के अर्न्तसंबंध

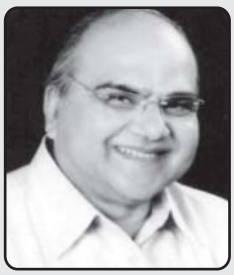

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

संवेदना की यही विवशता है कि वह रूपान्तरित होती रहती है। यही संवेदना कभी मेघमल्हार बनकर संगीत बन जाती है तो कभी अभिनय में ढलकर दु:खान्त नाटक। उसका स्वरूप परिप्रेक्ष्य के मुताबिक बदल जाता है। इस संवेदना का धरातल एक होता है लेकिन अभिव्यक्ति भिन्न हो जाती है, मन वही रहता है लेकिन अनुभव बदल जाते हैं और आंखें वही रहती हैं लेकिन दृष्टि बदल जाती है। संवेदना का, मन का और दृष्टि का यह बदलाव, यह रूपान्तरण ही अलग-अलग अनुशासनों को जन्म देता है। स्रोत एक होता है लेकिन स्रोतस्विनी के स्वरूप बदल जाते हैं। बर्फ के जमे हुए जल बिन्दु जब हिमालय के उत्तुंग शिखर पर प्रतिष्ठित होते हैं तो वे गौरीशंकर कहलाते हैं लेकिन जब प्रवहमान हो उठते हैं तो हरिद्वार में उनका नामकरण गंगा के रूप में हो जाता है। श्यामवर्ण यों तो मेघ का परिचय है लेकिन जब वह कदम्ब के नीचे बांसुरी बजाते किसी मनोहर में समा जाए तो सांवरे के रूप में उसकी पहचान बन जाती है और जब वह कुछ बीत जाए, निश्चेष्ट होकर सिमट जाए तो उसे इतिहास और इस निश्चेष्ट को जो प्राणवान बनाकर खड़ा कर दे तो ऐसे अनुशासन को साहित्य कहते हैं।

साहित्य और इतिहास यों तो पृथक-पृथक अनुशासन हैं लेकिन उनका उत्स एक ही है। यह प्रासंगिक होगा कि बड़े संक्षेप में इतिहास और साहित्य के आशय क्या हैं ? इन्हें जाना जाए और फिर इनके अर्न्तसंबंधों के बारे में कुछ रेखांकित किया जाए। इतिहास, इति+हा+आस इन तीन शब्दों से मिलकर बना है जिसका अर्थ है ऐसा निश्चय था या ऐसी घटना हुई थी। अंग्रेज़ी में भ्पेजवतल शब्द, ग्रीक शब्द हिस्टॉर या हिस्टोरिया से बना है जिसका ग्रीक में अर्थ है बुनना। भ्पेजवतल को एनल्स, फैबल्स, ट्रेडीशन या स्टोरी के रूप में भी जाना जाता है। जिससे इसकी व्याप्ति का बोध होता है। ग्रीक में हेरोडोट्स् को ऐसे प्रथम इतिहास लेखक के रूप में जाना जाता है जिसने इतिहास को एक शिक्षाप्रद तथा मानवीय विधा के रूप में स्थापित किया तथा हिकारियस को ऐसा इतिहासकार जिसने ईसा पूर्व छटवीं सदी में ग्रीक जाति का इतिहास वैज्ञानिक दृष्टि से लिखा। भारतीय परिप्रेक्ष्य में भी इतिहास केवल घटनाओं का संग्रह भर नहीं है बल्कि वह उनके आत्मपरक और क्रमबद्ध विश्लेषण की अभिव्यक्ति है। भारतीय इतिहास में नृतत्व विज्ञान और पुरातत्व दोनों शामिल हैं। भारतीय इतिहास के लेखन में अरब के इतिहास लेखक तबारी, अलमसूदी और विशेष रूप से इब्नखल्दून के वैज्ञानिक चिन्तन की झलक भी मिलती है। भारतीय इतिहास तथा इसके लेखन को लेकर वर्ष 1967 में प्रख्यात इतिहासकार डॉ. आर.सी. मजूमदार के हैरिस मेमोरियल व्याख्यान हुए थे। इन व्याख्यानों में उन्होंने यूरोप के इतिहास की प्रवृत्तियों के साथ साथ भारतीय इतिहास लेखन के बारे में विशेष रूप से उसकी कमियों के बारे में इंगित किया था। उन्होंने कहा था कि भारतीय इतिहास लेखन में तटस्थता कम दिखाई देती है साथ ही सामग्री के आधार पर निरपेक्ष विश्लेषण भी बहुत कम हैं तथा अतिशयोक्तियां अधिक हैं लेकिन भारतीय इतिहासकार की उदारवादी दृष्टि की उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा हैनरी बेर के इस कथन को खारिज कर दिया कि भारत में केवल घटनाऐं हैं इतिहास नहीं है।

भारतीय इतिहास की प्रवृत्तियों और उसके लेखन के संबंध में विस्तार से बात की जा सकती है लेकिन यदि बहुत संक्षेप में विचार करें तो यह स्पष्ट होता है कि भारतीय इतिहास को अंग्रेज़ों ने पूर्वग्रह के साथ लिखा। उनके अवदान को निश्चय ही नहीं भुलाया जा सकता लेकिन इस तथ्य से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि उन्होंने भारतीय इतिहास की स्वाभाविक धारा को सायास मोड़ देने का प्रयास किया। आज एलफिंस्टन के इस कथन से सहमत कोई भी नहीं होगा कि सिकन्दर के आक्रमण के पूर्व घटित किसी घटना की तिथि निश्चित नहीं की जा सकती। हमारे यहां अशोक के तिथियुक्त तथा वैज्ञानिक पद्धति से लिखे गए शिलालेख थे और उसके पूर्व मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, समथर तथा लोथल में मिली हुई ऐसी सामग्रियां हैं जिनके आधार पर कालक्रम निर्धारित किया जा सकता है। हमारे यहां भीमबैठका की ऐसी गुफाऐं हैं जिनमें ईसा के दस हजार पूर्व के आदि मानव के द्वारा किए गए रेखांकन हैं तो वहीं ईसा की दूसरी सदी में शुंग वंश की परम्परा का अश्वमेघ का घोड़ा भी अंकित हैं। एक पूरा सिलसिला इतिहास का कालक्रमानुसार भारत में है।

सनातन, जैन और बौद्ध साहित्य सहित हमारे यहां विपुल लोक साहित्य है, फाह्यान, ह्वेनसांग, मेगास्थनीज, अल्बरूनी, बर्नियर, टेवरनियर और लामातारानाथ जैसे यात्रियों तथा इतिहासकारों के यात्रा विवरण हैं, भूगर्भविदों तथा पुरातत्वविदों की खोजें हैं, मुद्राशास्त्र तथा चित्रांकन सहित एक समृद्ध वाचिक परम्परा है जिसके आधार पर भारत का वैज्ञानिक दृष्टि से इतिहास लिखा जा सकता है।

जितनी विपुल सामग्री और दृष्टि सम्पन्नता इस देश में है उतनी विश्व के शायद ही किसी देश में हो। हमारे यहां वेदों में विशेष रूप से अथर्ववेद में ऐतिहासिकता का उल्लेख है। कौटिल्य ने इतिहास को अपने अर्थशास्त्र में पंचमवेद कहा है। महाभारत जैसा इतिहास ग्रंथ और रामायण जैसा साहित्येतिहास जैसा ग्रंथ विश्व में कहीं नहीं है। पुराणों में राजा परीक्षित से लेकर पद्मनंद तक की सामग्री है। विष्णुपुराण में यदि मौर्यवंश की वंशावली है तो मत्स्यपुराण में आन्ध्रवंश की तथा वायुपुराण में गुप्तवंश की। फिर हमारे यहां पहली-दूसरी शताब्दी तक निरन्तर तक आज तक चरित लिखने की परम्परा है। अश्वघोष का बुद्धचरित, बाणभट्ट का हर्षचरित, महाराष्ट्री प्राकृत में वाक्पतिराज का गउडवहो, बिल्हण का विक्रमांकदेवचरित, हेमचन्द्र का कुमारपालचरित जैसी जीवनियां हमारे यहां हैं। पश्चिम की वैज्ञानिक दृष्टि से कहीं अधिक वैज्ञानिक तटस्थता के साथ हमारे यहां कल्हण के द्वारा लिखा गया राजतरंगिणी जैसा कश्मीर का इतिहास है। हमारे यहां रासोकाव्य की परम्परा है जिनमें शीर्ष पर चन्दबरदाई द्वारा लिखा गया पृथ्वीराजरासो, जायसी का पद्मावत, जगनिक

का पृथ्वीराजविजय और मेरूतुंग का प्रबंधचिन्तामणि है। ऐसा नहीं है कि संस्कृत में केवल राज इतिहास ही लिखा गया हो। हाल में संस्कृति मनीषी डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने संस्कृत काव्य की 'लोकधर्मी परम्परा' नामक अपनी कृति में संस्कृत के ऐसे कवियों तथा उनकी रचनाओं का उल्लेख किया है जो उस समय के समाज की झलक का हमें दर्शन कराते हैं।

भारत में रामकाव्य की परम्परा जो वाल्मीकि से प्रारम्भ हुई वह भवभूति के उत्तररामचरित से लेकर तुलसी के मानस तक और निराला की राम की शक्तिपूजा तक चली आई और कृष्णकाव्य जो महाभारत से उद्भूत हुआ उसकी परम्परा भागवत से होती हुई गीतगोविन्द तक और गीतगोविन्द से कनुप्रिया तक चली आई है।

इस तरह यदि हम समग्रता में देखे तो हमें उस प्रत्येक राजवंश का व उसके शासकों का काव्यमय या गद्यमय इतिहास मिल जाएगा जिन्होंने भारत पर शासन किया। इनमें हैं शुंग, सातवाहन, इक्ष्वाकु, कुषाण, गुप्त, वाकाटक, चालुक्य, पल्लव, राष्टकूट, पाल, सेन, चोल, सलसतरम्भा, गंग, होयसल, प्रतिहार, परमार, चन्देल और सोलंकी, जैन वांग्मय में कल्पसूत्र तथा कालकाचार्य कथा, यशोधरचरित, नेमीनाथचरित, शांतिनाथचरित, चन्द्रप्रभचरित, कथासरितसागर, त्रिषष्टिशलाकाचरित, यशोधरचरित, नायाधम्माकहाओ, सुरसुन्दरीकहा तथा कुवलयमाला जैसे इतिहास ग्रंथ है जिनमें तीर्थंकरों की जीवनियां तथा अपने समय का इतिहास हैं। ये सभी ग्रंथ ईसा की आरम्भिक सदियों से लेकर दशवीं सदी तक के ग्रंथ हैं। कल्पसूत्र तो आचार्य भद्रबाहु ने संस्कृत में ईसा पूर्व ईस्वी सन् 385 में लेखबद्ध किया था।

बौद्ध परम्परा में भी बुद्ध की अनेक जीवनियां हैं। त्रिपिटकों से लेकर थेरगाथा, चुल्लवग्ग, प्रज्ञापारमिता तथा अष्टसहार्सिका जैसे अनेक ग्रंथ हैं जिनमें विपुल ऐतिहासिक विवरण हैं। राहुलजी ने इस सामग्री का संकलन कर हिन्दी जगत के समक्ष इसे प्रकाशमान किया है। इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि भारत में इतिहास लेखन की प्राचीन परम्परा रही तथा ऐसे इतिहास के सर्जक आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक दृष्टि से संपन्न थे।

जहां तक मुस्लिम काल का प्रश्न है, सल्तनत काल में अमीर खुसरो से लेकर मिनहाज उससिराज जिसने तबकात-ए-नासिरी लिखी जैसे इतिहास लेखक हैं। मुग़लकाल में उसके संस्थापक जहीरूद्दीन मोहम्मद बाबर ने अपनी आत्मकथा वाकयात-ए-बाबरी या जिसे तुजुक-ए-बाबरी भी कहते हैं लिखी। हुमायूंनामा, आईन-ए-अकबरी जैसे इतिहास ग्रंथ लिखे गए तथा जहांगीर ने तुजुक-ए-जहांगीरी लिखी। शाहजहां के समय में सचित्र पादशाहनामा की रचना हुई जो अभी विंडसर कैसल म्यूज़ियम लंदन में है। अकबर के समय में अब्दुल कादर बदायुनी ने रामायण और महाभारत सहित हिन्दुओं के तमाम ग्रंथों का फारसी में अनुवाद किया। यह परम्परा थमी नहीं अपितु निरन्तर चलती रही।

भारत के विभिन्न अंचलों में भी प्राचीनकाल और मध्यकाल से लेकर आधुनिक समय तक में वैज्ञानिक दृष्टि से अनेक ग्रंथ लिखे गए। यह भी उल्लेखनीय है कि मराठी में बाड़ लेखन की परम्परा रही है। बाड़ दैनन्दिन के रूप में लिखे जाते थे तथा पं. विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े ने इनका संकलन कर इतिहास लिखा। रोजनामचे लिखने की भी परम्परा जो मुग़लकाल से चली आई वह आज तक निरन्तर है।

आधुनिक इतिहासकारों में डॉ. ईश्वरीप्रसाद, डॉ. बेनीप्रसाद, डॉ. जी.आर. शर्मा, आर.पी. त्रिपाठी, डॉ. आर.सी. शर्मा, डॉ. यदुनाथ सरकार, डॉ. कालिकारंजन कानूनगो से लेकर डॉ. आर.सी. मजूमदार, डॉ. खलीक अहमद निजामी, डॉ. ताराचन्द, डॉ. इरफान हबीब, डॉ. नूरूलहसन, डॉ. रोमिला थापर, डॉ. सतीशचन्द्र, डॉ. विपिनचन्द्र तथा डॉ. हरबंसमुखिया जैसे इतिहासकार हैं जिनकी अपनी दृष्टि है। भारत का इतिहास विन्सेंट स्मिथ, एलफिंस्टन, एस.सी. रॉबर्ट्स तथा रशब्रूक विलियम्स जैसे पाश्चात्य इतिहासकारों ने भी अपनी दृष्टि से लिखा। मार्क्सवादी चेतना से प्रभावित इतिहासकारों ने अपनी दृष्टि से जहां भारतीय इतिहास को लिखा वहीं मास्टर सुन्दरलाल जैसे इतिहासकारों ने राष्ट्रीयता से ओतप्रोत इतिहास की रचना की। यह भी उल्लेखनीय है कि उन्नीसवीं सदी में जो ज्ञान की नई लहर पश्चिम में आई उसका व्यापक प्रभाव इतिहास लेखन पर पड़ा। जॉन स्टुअर्ट मिल, मॉल्थस, कारलाईल तथा अर्नाल्ड ट्वाईनबी जैसे चिंतकों के लेखन का प्रभाव भी इतिहास लेखन पर पड़ा।

हमारे यहां डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, रायकृष्णदास तथा डॉ. रघुवीरसिंह जैसे इतिहास और साहित्य सर्जक हुए जिन्होंने इतिहास और साहित्य को जोड़कर इतिहास रचा। रामधारीसिंह दिनकर जैसे प्रख्यात कवि हुए जिन्होंने 'संस्कृति के चार अध्याय' जैसी कालजयी कृति रची। इस कृति में भारतीय संस्कृति और साहित्य का इतिहास है।

इतिहास और उसके भारतीय परिप्रेक्ष्य के संबंध में मैंने जो कुछ कहा उससे यह निष्कर्ष सामने आता है कि भारतीय इतिहास लेखन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है तथा भारतीय इतिहासकारों के पास एक वैज्ञानिक दृष्टि भी रही है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि भारत में इतिहास के मर्म को समझने की सामर्थ्य नहीं थी अथवा भारत में वैज्ञानिक दृष्टि से इतिहास नहीं लिखा गया।

जहां तक साहित्य का प्रश्न है, साहित्य सहित शब्द में आकारत्व के साथ 'य' प्रत्यय के योग से बना है। प्रख्यात वैयाकरण भामह ने अपने ग्रंथ का काव्यालंकार में साहित्य की परिभाषा देते हुए कहा है, ''सहितस्य भाव: साहित्यम' राजशेखर और कुन्तक ने भी साहित्य का प्राय: यही अर्थ किया है। भारतीय वांग्मय में साहित्य की अनेक परिभाषाऐं दी गईं हैं। लेकिन इन सबका सार एक ही है और वह है सबके सहित। साहित्य तब तक साहित्य है ही नहीं जब तक उसमें कहीं स्व है, निजता है केवल अपने तक सिमटने का भाव है। साहित्य समग्र का है इसीलिए साहित्य है और तैत्रीय उपनिषद में इस भावना का उद्घोष रसो वैस: कहकर किया गया है अर्थात रस हमारी सबकी दैवीय प्रकृति है। जहां रस है वहां वह है ही इसीलिए क्योंकि वह सबका है। भारतीय दर्शन का भी यही स्वर है,

अयं निज: परो वेति, गणना लघु चेतसाम
उदार चरितानां च, वसुधैव कुटुम्बकम्

पूरे विश्व को साथ लेने का भाव और यह भाव इतना प्रबल है कि यदि तुलसी राम की कथा स्वांत: सुखाय भी लिखते हैं तो वह युगों-युगों के, पूरे समाज के सुख के लिए कही गई कथा हो जाती है और सूर जैसे दृष्टा जब अपनी आंखों के कोटरों में राधा-कृष्ण की लीला देखते हैं तो फिर वह लीला जन-जन की आंखों में समा जाती है और सूर के जैसा दृष्टिसंपन्न सर्जक हमें संसार में दूसरा नहीं दिखाई देता। उनकी आंखों का अन्धत्व समूचे युग का आलोक बन जाता है। सूर की आंखें हमारी आंखे हो जाती हैं।

इसलिए भारत के संदर्भ में साहित्य की भित्ति बड़ी व्यापक है। मैं विश्व साहित्य के संदर्भ में इतिहास और साहित्य के अर्न्तसंबंधों के बारे में यदि कहूं तो वह एक वृहद विषय होगा इसलिए मैं भारतीय साहित्य, विशेषकर

संस्कृत और हिन्दी साहित्य तथा इतिहास के संदर्भ तक ही अपने आपको सीमित रखना चाहता हूं।

भारत में साहित्य का अर्थ जैसा कि मैंने निवेदन किया बड़ा व्यापक है। भारतीय साहित्य भाषा को भाषा के साथ या भाव को भाव के साथ ही नहीं मिलाता अपितु मानव को मानव के साथ, अतीत को वर्तमान के साथ और बाह्य को अन्तर के साथ मिलाता है और इसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल वृत्तियों का सामन्जस्य कहते हैं।

हमारे यहां संस्कृत भारत की विभिन्न भाषाओं के साहित्य की जननी भाषा है। वेद इसके उद्गम हैं और फिर उपनिषद हैं, स्मृतियां हैं, ब्राह्मण है, सूत्र हैं, पुराण हैं। ईसा के पूर्व की सदियों में लिखी गई पाणिनी की अष्टाध्यायी है, कौटिल्य का अर्थशास्त्र तथा वात्स्यायन का कामसूत्र है और उसके बाद कालिदास के काव्य और नाटकों से लेकर बाणभट्ट का हर्षचरित और भोज का समरांगण-सूत्राधार से लेकर जयदेव का गीतगोविन्द है। कहने को तो ये सब काव्य, नाटक और गद्य के ग्रंथ हैं, इनमें से कुछ धर्म के ग्रंथ कहे जाते हैं लेकिन वास्तव में ये भारतीय साहित्य की आत्मा का प्रतिनिधित्व करने वाले वे ग्रंथ हैं जिनमें भारत का कीर्तिमय इतिहास अपनी कहानी कहता है। इसी तरह के कुछ ग्रंथो का उल्लेख मैंने पूर्व में भी किया है।

विद्वानों ने संस्कृत, प्राकृत, पाली, मागधी, अर्द्धमागधी और अपभ्रंश में रचे गए साहित्य को लेकर काल विभाजन किया है और ऐसा काल विभाजन वैज्ञानिक रूप में सबसे पहले ईस्वी सन् 1847 में पुर्तगाली भाषाविद गार्सादा तासी ने किया था। उन्होंने आख्यान, आदिकाव्य, इतिहास और काव्य इन चार खण्डों में इतिहास को बांटा था। उसके बाद का महत्वपूर्ण कार्य ग्रियार्सन का है जिन्होंने The modern vernacular literature of Hindustan नामक ग्रंथ रचा जिसमें उन्होंने भारत की तमाम बोलियों और उपबोलियों के बारे में जानकारी देते हुए कुल 952 कवियों की रचनाओं को संग्रहीत किया। उसके बाद महेशदत्त शुक्ल ने ईस्वी सन् 1873 में भाषाकाव्य संग्रह, मातादीन मिश्र ने 1876 में कवित्त रत्नाकर और 1877 में शिवसिंह सेंगर ने शिवसिंह सरोज नामक ग्रंथ लिखे जिनमें साहित्य भी है और इतिहास भी। वह इसलिए क्योंकि इन ग्रंथों में जिस साहित्य को संकलित किया गया है वह साहित्य अपने समय का और उसके पूर्व के समय का वृत्तान्त प्रस्तुत करता है। इस संदर्भ में उस ग्रंथ का उल्लेख भी बड़ा प्रासंगिक है जो कर्नल जेम्सटाड ने लिखा था, Annals and antiquities of Rajasthan इस ग्रंथ में राजस्थान का इतिहास वहां की प्रचलित कथाओं के आधार पर तथा साहित्य के आधार पर लिखा गया है।

हिन्दी साहित्य को आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल के कालखण्डों में परम्परागत रूप से बांटा जाता रहा है और रासोकाल या वीरगाथाकाल जैसे विभाजन भी किए गए हैं। ये विभाजन इतिहास केन्द्रित हैं। हिन्दी साहित्य के काल विभाजन की दृष्टि से यों तो अनेक ग्रंथ लिखे गए लेकिन इनमें महत्वपूर्ण हैं मिश्र बन्धुविनोद जिसमें 4591 कवियों के संबंध में जानकारी दी गई है उसके बाद रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दर दास, हरिऔध तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के द्वारा किए गए काल विभाजन हैं जिनके संबंध में विस्तार से बात करना विषयान्तर होगा।

इतिहास और साहित्य के संबंध में इतनी जानकारी से यह स्पष्ट होता है कि ये दोनों अनुशासन एक दूसरे पर अर्न्तअवलम्बित हैं। साहित्य से ही इतिहास जन्मता है। साहित्यकार के पास प्रतिभा होती है, उसकी अपनी एक दृष्टि होती है। वे घटनाऐं जो घटकर फॉसिल बन जाती हैं उन्हें साहित्यकार पुर्नजीवन दे देता है जबकि इतिहासकार का कार्य या धर्म यह होता है कि वह सत्य की खोज करे और प्रयास करे कि घटनाऐं अपने सही परिप्रेक्ष्य में सही कालक्रम में सामने आएं और इस अर्थ में जो कर्म साहित्यकार का है जिसमें वह अपनी कल्पनाशीलता के आधार पर कुछ नया गढ़ देता है वह इतिहासकार के लिए स्वीकार्य नहीं है। इस दृष्टि से साहित्य और इतिहास एक दूसरे पर अवलम्बित रहते हुए एक दूसरे से दूर भी हैं। साहित्यकार के लिए पुरातत्व, शिलालेख, चित्र, शिल्प और स्थापत्य तथा भाषा विवरण का महत्व नहीं है जबकि इतिहासकार के लिए यह उसके सबसे बड़े उपकरण हैं। इसीलिए इतिहासकार का कार्य एक साधक का कार्य है। उसे बहुत परिश्रम करना होता है। मैं एक उदाहरण कालिकारंजन कानूनगो का देना चाहता हूं। वे सर यदुनाथ सरकार के शिष्य थे। उन्होंने उन्हें बचपन से पालापोसा था। उन्होंने इतिहास में ही एम.ए. किया और डॉ. सरकार के निर्देशन शेरशाह पर अपना शोधग्रंथ लिखा। डॉ. सरकार ने उसकी भूमिका लिखी जिसमें उनके कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की लेकिन एक पंक्ति लिख दी कि यह ग्रंथालय का कार्य है। डॉ. सरकार दिवंगत हो गए लेकिन डॉ. कानूनगो ने अपना शोधकार्य जारी रखा और डॉ. सरकार के निधन के लगभग 25 वर्ष बाद उन्होंने शेरशाह का नया संस्करण तैयार किया जिसमें कुछ स्थापनाऐं उन्होंने बदलीं। वे दस वर्ष तक उस अफगानी कबीले के बीच आते जाते रहे जिस कबीले में शेरशाह ने जन्म लिया था। उन्होंने शेरशाह का एक प्रामाणिक व्यक्ति चित्र बनाया और इतिहासकारों में यह उक्ति प्रचलित है कि अपने जीवन में जहां शेरशाह का एक कदम पड़ा वहां डॉ. कानूनगो के दस कदम पड़े हैं। इस लिहाज से साहित्य का इतिहास लिखने वाले और इतिहासकार इन दोनों के परिश्रम की तुलना की जा सकती है लेकिन जहां तक साहित्य के मौलिक सर्जक का प्रश्न है, उसकी साधना इस स्तर की नहीं होती।

इतिहास और साहित्य के अर्न्तसंबंधों पर बात करने के लिए यों तो उक्त के अलावा अनेक बिन्दु हैं लेकिन उन सबकी चर्चा करना अत्यन्त समयसाध्य है इसलिए मैं संक्षेप में केवल कुछ बिन्दुओं का ही उल्लेख करना चाहूंगा।

हिन्दी में यदि हम इस परिप्रेक्ष्य में आधुनिक काल के साहित्य पर दृष्टिपात करें तो हमें अनेक इतिहास केन्द्रित ग्रंथ मिल जाएंगे जिनकी आधारभूमि इतिहास है। हम चाहे वृन्दावन लाल वर्मा या अमृतलाल नागर के उपन्यासों को लें या मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, जयशंकर प्रसाद से लेकर धर्मवीर भारती के काव्यों को लें, हमें यह ज्ञात होगा कि यह समूचा साहित्य इतिहास की आधारभूमि पर तो रचा गया है लेकिन इसके विवरण इतिहासकारों की पूरी-पूरी सहमति हो यह आवश्यक नहीं है। साकेत, यशोधरा और उर्वशी में जो कुछ है, आवश्यक नहीं कि उससे इतिहासकार सहमत हों। इसका कारण जैसा कि मैंने पूर्व में उल्लेख किया दृष्टि की भिन्नता का है। साहित्यकार आग्रही नहीं होता जबकि इतिहासकार बहुत आग्रही होता है सत्य के प्रति। इस लिहाज से मुझे एक बड़े अचर्चित से उपन्यास की याद आती है जिसमें सर्जक ने पूरी ईमानदारी के साथ इतिहासकार और साहित्यकार दोनों के धर्म का निर्वाह किया है और वह उपन्यास है खजुराहो की पृष्ठभूमि पर लिखा गया स्व. अंबिका प्रसाद दिव्य का ऐतिहासिक उपन्यास, खजुराहो की अतिरूपा। इस उपन्यास जहां एक ओर तत्कालीन बुन्देलखण्ड की सामाजिक स्थिति व तन्त्र के प्रभाव को चित्रित किया गया है वहीं दूसरी ओर कालक्रम की

दृष्टि से चन्देलों के ऐतिहासिक तथ्य व सत्य की भी रक्षा की गई है। मुझे इन्दौर के ही प्रख्यात साहित्यकार व उपन्यासकार डॉ. शरद पगारे जी की याद आती है जिन्होंने गुलारा बेगम ने मध्यकालीन बुरहानपुर को साकार कर दिया।

साहित्य और इतिहास के अर्न्तसंबंधों को लेकर आज के समय में एक बड़ी और महत्वपूर्ण बहस प्रगतिशील इतिहासकारों ने आरम्भ की है जिसका प्रतिनिधित्व डॉ. रोमिला थापर व डॉ. सतीशचन्द्र व हरबंस मुखिया जैसे इतिहासकार करते हैं। इन इतिहासकारों का मानना है बिना किसी सिद्धांत या दृष्टिकोण के कोई इतिहास हो ही नहीं सकता। उनके अनुसार इतिहास पीढ़ी दर पीढ़ी सम्प्रेषित होने वाली सूचनाओं का भण्डार मात्र नहीं है बल्कि इन सूचनाओं की तर्कपूर्ण व्याख्या पर वह आधारित है और इसके लिए यह देखा जाना आवश्यक है कि साहित्य के माध्यम से जो मिथक चले आ रहे हैं, उन मिथकों की क्या प्रामाणिकता है तथा इन मिथकों की रचना के पीछे कौन-से सिद्धांत रहे हैं ? यह एक जटिल स्थिति है। वाक् परम्परा से जो मिथक चलते आए हैं और हमारे पुरखों ने जो घटित हुआ उसे यदि यथारूप वर्णित कर दिया तो फिर उसका इस दृष्टिकोण से विश्लेषण करना कि उनके द्वारा दी गई सूचनाऐं किसी न किसी सिद्धांत से आबद्ध रही होंगी, उचित नहीं है। साहित्य में समाए इतिहास का परीक्षण अकेले तथ्यों व सिद्धांतों के आधार पर नहीं किया जा सकता और इसी तरह इतिहास में समाए साहित्य के पीछे किसी सिद्धांत विशेष की खोज करना भी तर्कपूर्ण नहीं है। यद्यपि प्रगतिशील इतिहासकारों में अग्रगण्य डॉ. रोमिला थापर का यह भी कहना है कि भारतीय साहित्य का आग्रह रहित विश्लेषण तथा परीक्षण किया जाना चाहिए। उनका यह कथन एक संतुलित मत की अभिव्यक्ति है।

इतिहास और साहित्य का संबंध इस बिन्दु पर बड़ा स्वतंत्र और निरपेक्ष है तथा उसी के अनुसार इसे देखा जाना चाहिए।

एक दूसरा महत्वपूर्ण बिन्दु जो साहित्य और इतिहास के अर्न्तसंबंधों को रेखांकित करता है वह है साहित्य और इतिहास दोनों के कला से संबंध। चाहे दृश्य कला हो या कोई अन्य कला, उसके सीधे संबंध इन दोनों अनुशासनों से है इसलिए साहित्य और इतिहास के अर्न्तसंबंधों को कला से पृथक करते हुए चर्चा करना अधूरी चर्चा है। यदि भारतीय लघुचित्रों की परम्परा को ही लें जो ग्यारहवीं सदी से लेकर उन्नीसवीं सदी तक अप्रतिहत रूप से विद्यमान रही तो हम पाऐंगे कि इन लघुचित्रों में राग-रागिनियों को चित्रित किया गया है अर्थात् ध्वनि का चित्रण है। हम देखेंगे कि इन लघुचित्रों में वाल्मीकि की रामायण, तथा व्यास के महाभारत के प्रसंगों सहित कालिदास के रघुवंश आभिज्ञानशाकुन्तल के प्रसंगों को चित्रित किया गया है। मुग़लकालीन लघुचित्रों में ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण है। फतेहपुर सीकरी के निर्माण से लेकर विभिन्न युद्ध दृश्यों को चित्रित किया गया है। मध्यकाल की पहाड़ी और राजस्थान व मालवा की चित्रशैलियों में केशव की रसिकप्रिया व कविप्रिया, बिहारी की सतसई, मतिराम के रसराज तथा पुहकर की रसबेली के प्रसंगों को चित्रित किया गया है। इस चित्रण में कल्पनाशीलता भी है जो इस चित्रकर्म को साहित्य के निकट ले जाती है। इसलिए जब कभी साहित्य और इतिहास के अर्न्तसंबंधों की चर्चा हो तो यह सूत्र ध्यान में रखा जाना बहुत आवश्यक है कि ये अर्न्तसंबंध भारतीय कला के दृढ़ स्तम्भ पर अवलम्बित हैं।

यहां एक और दिलचस्प तथ्य का उल्लेख करना चाहता हूं जो स्व. रायकृष्णदासजी ने उद्घाटित किया था जो साहित्य, कला और इतिहास इन तीनों के अर्न्तसंबंधों पर विस्तार से प्रकाश डालता है। उन्होंने ग्यारहवीं से सत्रहवीं सदी तक चित्रांकन की उस शैली को अपभ्रंश शैली का नाम दिया जिसमें भारत में मुख्य रूप से भारत में जैन ग्रंथ चित्रित किए गए थे और इसका कारण उन्होंने यह दिया कि उस काल में भारत में अपभ्रंश बोली जाती थी जो अनगढ़ भाषा थी और जिसका प्रभाव चित्रांकन पर हुआ जिसके कारण अपभ्रंश शैली में अनगढ़ तथा अपारिष्कृत चित्र बनाए गए। उन्होंने उस समय के साहित्य ग्रंथों से ऐसे उदाहरण दिए जिनके अनुसार राजदरबार के कवि अपभ्रंश के कवियों को निम्न मानकर उनकी हंसी उड़ाते हैं। यह तथ्य साहित्य, इतिहास और कला के इन तीनों के अर्न्तसंबंधों को उजागर करता है। वैसे भी कालक्रम के लिहाज से विभाजित शिल्प, स्थापत्य और चित्रांकन इतिहास के अन्तर्गत ही आते हैं

साहित्य और इतिहास के अर्न्तसंबंधों को तलाशने का एक कोण है इतिहास की और साहित्य की मूल प्रवृत्ति से साक्षात्कार। साहित्य की वृत्ति उल्लास या अवसाद उत्पन्न करने की होती है, उसकी वृत्ति उद्वेलन की होती है। यदि कोई मन छूने वाली कविता बार-बार सुनी जाती है तो हम बार-बार उससे प्रभावित होते हैं लेकिन इतिहास की वृत्ति तटस्थता की है। उसमें उद्वेलन कहीं नहीं है इसलिए जब कभी हम ऐसे इतिहास को पढ़ते हैं जिसमें सपाट ढंग से तथ्य सहित घटना वर्णित कर दी गई है तो फिर उसे दुबारा पढ़ने का मन नहीं होता जबकि उसी घटना के आधार पर यदि कोई उपन्यास लिखा गया हो या कविता लिखी गई हो तो उसे बार-बार पढ़ने का मन करता है। इसलिए इतिहास की घटना साहित्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी कृति आस्था और सौन्दर्य में इस अर्न्तसंबंध के बड़े रोचक विवरण दिए हैं। उन्होंने डॉ. वृन्दावन लाल वर्मा के उन नोट्स का वर्णन दिया है जो उन्होंने मृगनयनी तथा गढ़कुंडार लिखते समय लिए थे। इनमें ग्वालियर के किले का चित्र भी है और कुतुबमीनार की लाट पर खुदे हुए शिलालेख का वर्णन भी है।

साहित्य और इतिहास के अर्न्तसंबंधों पर उन्नीसवीं सदी में भारत में बड़े विस्तार से विचार हुआ। इस बारे में सुप्रसिद्ध भाषा विज्ञानी डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी व डॉ. आर.सी. मजूमदार ने विस्तार से विचार किया है। उन्नीसवीं सदी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य में एक आंदोलन खड़ा कर दिया। खड़ी बोली में रचनाऐं लिखी गई तथा भारतेन्दु ने विशेष रूप से नाटक लिखे। उन्होंने निबंध लिखे और निबंधकारों की एक अटूट श्रृंखला निर्मित हुई जिसमें थे बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, और बालमुकुन्द गुप्त ये वे निबन्धकार थे जिन्होंने अपने समय को और अपने अतीत को अपनी लेखनी में बांधा। प्रतापनारायण मिश्र के शिवशम्भू के चिट्ठे वास्तव में ऐतिहासिक दस्तावेज़ ही हैं। यह परम्परा आगे बढ़ी और इसमें आचार्य पूर्णसिंह और बाबू गुलाबराय जैसे निबंधकार आए और फिर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के साथ ललित निबंध का युग शुरू हुआ। द्विवेदी जी का सबसे बड़ा योगदान भारतीय इतिहास को पुर्ननवा बनाने का है। उन्होंने अशोक के फूल, कुटज, शिरीष के फूल, देवदारू तथा आम फिर बौरा गए जैसे निबंध लिखे जिनमें इस महान देश के इतिहास की पूरी झांकी समाई है इसमें कालिदास और वात्स्यायन के सृजन में वर्णित घटनाओं से लेकर आर्य, अनार्य, गंधर्व और हमारे सभी देवी देवताओं का इतिहास है। हिमालय से लेकर भारत की तमाम पवित्र नदियों के इतिहास को उन्होंने अपने निबंधों के पिरोया है। उन्होंने भारतीय इतिहास के उन अनछुए पहलुओं को भी उजागर किया है जो इतिहासकार की दृष्टि से छूट गए थे जैसे प्राचीन भारत में मदनोत्सव तथा प्राचीन भारत के रईस। इस परम्परा को आगे

बढ़ाया डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने जिन्होंने व्यक्ति व्यंजक निबंधों के माध्यम से भारतीय इतिहास के अभिप्राय को स्पष्ट कर दिया उन्होंने डॉ. आनन्द कुमार स्वामी तथा डॉ. स्टेला क्रेमरिश की दृष्टि को अपने दृष्टिकोण से विस्तारित किया। वे वास्तव में आधुनिक युग के भारतीय कला, साहित्य और इतिहास के संगम पुरूष हैं।

आधुनिक समय में निबंधकारों की त्रयी है जिसमें है डॉ. विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय तथा विवेकीराय। भारतीय सौन्दर्य दृष्टि तथा इतिहास के अभिप्राय पर यदि विद्यानिवासजी ने कार्य किया तो महाभारत, रामायण और हमारे प्राचीन भारतीय मिथकों पर बड़े विद्वत्तापूर्ण ढंग से विचार किया डॉ. कुबेरनाथ राय ने। उन्होंने गंधमादन, किरात नदी में चन्द्रमधु और रामायणमहातीर्थम जैसे स्मारक ग्रंथ लिखे जो साहित्य और इतिहास के अर्न्तसंबंधों को बड़े स्पष्ट रूप में स्थापित करते हैं। विवेकीजी ने लोक इतिहास के परिप्रेक्ष्य में अपने साहित्य की रचना की है और इस परम्परा को आगे बढ़ाया कृष्णबिहारीजी मिश्र ने।

मुझे इस परिप्रेक्ष्य में यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि हिन्दी निबंध ने भारतीय इतिहास के परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट करने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

लोकसाहित्य और इतिहास का सीधा संबंध भारत में प्राचीनकाल से ही लोकसाहित्य रचने की परम्परा रही है। इस लोकसाहित्य में इतिहास अपने प्रत्येक आयाम के साथ मुखर है। लोकसाहित्य और इतिहास को लेकर प्रगतिशील इतिहासकार श्री बद्रीनारायण ने महत्वपूर्ण कार्य किया। उनका यह कहना अपने स्थान पर पूरी तरह उचित है कि इतिहास से एक नई भाषा बनती है और इस भाषा से इतिहास रचा जाता है। लोकसाहित्य के उपादान इतिहास के रिक्त स्थानों की पूर्ति करते हैं।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि इतिहास के मर्म का संबंध साहित्य के मर्म से होता है और इसके उदाहरण पं. माखनलाल चतुर्वेदी के विशेष रूप से साहित्य देवता के निबंध हैं।

यूरोप में लिटरेचर के दो अर्थ हैं, एक व्यापक और दूसरा विशिष्ट लेकिन भारत में ऐसा नहीं है। हमारे यहां जो दृश्यकाव्य, श्रव्यकाव्य व चम्पूकाव्य लिखे गए उनमें समग्रता का भाव है। चाहे जीवनी हो या आलोचना इन सबमें समग्रता का लोकभाव हमारे यहां साहित्य समाचार नहीं है उसमें रस है, भाव है, राग है और यही कारण है कि इनके कारण ऐसे ललित साहित्य की सृष्टि हुई जिसमें इतिहास ग्रंथ बहुत लिखे गए। वास्तव में भारतीय इतिहास लेखक की खोज का अंत तब होता है जब वह सभी घटनाओं, स्मृति चिन्हों तथा प्रमाणों के पीछे छिपी मानव चेतना का रूप पहचानता है। इसलिए साहित्य और इतिहास भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक दूसरे से कुछ इस तरह से घुले मिले हैं जैसे फूल में उसकी सुगंध और इन अर्थों में भारतीय इतिहास और साहित्य का सृजन सिशिरों के इस कथन की पुष्टि करता है कि सभी अनुशासन मूलत: परस्पर संबद्ध हैं। यही कारण है कि ग्रीक दर्शन और भारतीय दर्शन के मिलन बिन्दु अनेक स्थलों पर हमें दिखाई देते हैं।

भारत में भी साहित्य का इतिहास लिखा गया। इसे साहित्येतिहास भी कहते हैं। यह मनुष्य की उस चेतना की पहचान है जिसके बल पर घास का एक कोमल अंकुर भी सिर उठाकर पत्थर से बाहर निकल आता है।

भारतीय साहित्य में आलोचना का तत्व प्रमुख है। वह साहित्य का अविभाज्य अंग है और यही वृत्ति भारतीय इतिहासकार में भी है। वह केवल घटनाओं का वर्णन नहीं करता बल्कि उन्हें आलोचनात्मक दृष्टि से परखता भी है और उसकी यही वृत्ति इतिहास और साहित्य को एक दूसरे से जोड़ती है और उनके संबंध सूत्रों को रेखांकित करती है।

साहित्य और कला के बीच संवाद की परम्परा विदेशों में है लेकिन हमारे यहां यह वर्तमान में विलुप्त होने की कगार पर है। वहां अर्न्तअनुशासिक अध्ययन के विभाग ही पृथक से बनाए गए हैं लेकिन हमारे देश में जहां विभिन्न अनुशासनों के बीच परस्पर संवाद की प्राचीन और सुदीर्घ परम्परा रही है वहां ऐसे संवाद प्राय: होते ही नहीं। यहां तक कि सर्जकों के बीच में भी संवाद शून्यता की स्थिति है। कथाकार का उपन्यासकार से और लघुकथाकार से, निबंधकार का नाटककार से और मात्रिक छंद के कवि का अकविता वाले कवि से संवाद ही नहीं है बल्कि एक दूसरे को न जान पाने की परिस्थितियां भी हैं। साहित्य के लिए यह एक भयावह स्थिति है। इसलिए कि साहित्य में किसी न किसी रूप में तमाम दूसरे अनुशासन प्रतिबिम्बित होते हैं। साहित्य और इतिहास के अर्न्तसंबंधों के बारे में किए गए इस विहंगावलोकन में बहुत से पक्ष संभवत: सम्मिलित होने से रह गए हों। समय की सीमा भी इन पहलुओं के रेखांकित होने में बाधा बनी है लेकिन सार रूप में यह तथ्य हमारे सामने उपस्थित हो जाता है कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में साहित्य और इतिहास एक दूसरे से अनुस्यूत हैं। वे एक दूसरे से अभिन्न हैं। उनकी भित्ति एक है, धरातल एक है लेकिन अभिव्यक्ति भिन्न है। लक्ष्य दोनों का ही एक है और वह है चेतना का बार-बार पुर्ननवीनीकरण करना। इतिहास यदि देह है तो साहित्य उसकी आत्मा है, इतिहास यदि क्षितिज है तो साहित्य उसके वक्ष पर ऊगा हुआ इन्द्रधनुष, इतिहास यदि धरती है तो साहित्य उसकी हरीतिमा और इतिहास यदि सागर है तो साहित्य उसकी वह तरंग, वह हिलोर जिसके बिना सागर की पहचान नहीं बनती।

इन दोनों का लक्ष्य नवीन बनाना नहीं है बल्कि चिरनवीन बने रहना है। जैसा कि डॉ. आनन्द कुमार स्वामी कहते रहे। भारतीय इतिहास की ऊषा बार-बार उसके साहित्य में जायमान होती रही है और होती रहेगी। जब कभी साहित्यकार उसे विस्मृत करेगा तो यह ऊषा उसे अपनी सच्ची कथा कहने के लिए बाध्य करती रहेगी, नागार्जुन, कालिदास से कहते रहेंगे,

कालिदास सच-सच बतलाना
इन्दुमति के मृत्यु शोक से अज रोया या
तुम रोए थे,
कालिदास सच-सच बतलाना रति का क्रन्दन
सुन आंसू से तुमने ही तो दृग धोए थे,
कालिदास सच-सच बतलाना
पर पीड़ा से पूर-पूर हो,
थक-थक कर औ चूर-चूर हो
अमल धवल गिरि के शिखरों पर
सोया यक्ष कि तुम सोए थे
कालिदास सच-सच बतलाना
रोया यक्ष कि तुम रोए थे
कालिदास सच-सच बतलाना

लेखक प्रख्यात ललित निबंधकार तथा कलाविद् है।
- 85, इन्दिरा गांधी नगर, आर.टी.ओ. कार्यालय के पास, केसरबाग रोड, इन्दौर (म.प्र.)
पिन- 452001, मो.: 94250 92893

आचार्य शंकर का अद्वैत वेदान्तः सार्वभौमिक एकात्मता का दर्शन

अम्बिकादत्त शर्मा

कोऽहम् कुत आजाता, किम् इयं विसृष्टिः, कस्मै देवाय हविषा विधेम – मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, यह चराचर सृष्टि क्या है और किस देवता को हविष प्रदान करना है, यह सब मनुष्य की जिज्ञासा के शाश्वत प्रश्न रहे हैं। भगवत्पाद आचार्य शंकर का अद्वैत वेदान्त मनुष्य के स्वरूप की खोज और उसके गंतव्य की इसी वैदिक जिज्ञासा का दार्शनिक उत्स और पर्यवसान दोनों है। इसलिए भारतीय दर्शन परम्परा के अधिकांश सम्प्रदाय भारतीयता का प्रतिनिधित्व जहाँ उसके भौगोलिक परिधि में होने के अर्थ में करते हैं वहीं अद्वैत वेदान्त की विचार और भाव-धारा भौगोलिकता की सीमा को पार कर भारतीयता को तदात्मक प्रतिनिधित्व प्रदान करती है। दार्शनिक दृष्टि से कहा जाये तो वस्तुतः भारतीयता का विशेषण 'अद्वैत वेदान्त' नहीं, अपितु अद्वैत वेदान्त का विशेषण ही भारतीयता बनती है। यही कारण है कि भारत के सांस्कृतिक जीवन और दार्शनिक मानस में अद्वैत वेदान्त की प्रतिष्ठा एक दार्शनिक धर्म के रूप में हुई है। यह भारतीय परम्परा का सर्वाधिक गतिशील दर्शन और उसी अनुपात में सांस्कृतिक परिव्याप्ति रखने वाला जीवन-दर्शन है। एंथ्रोपोसेंट्रिक (मानव-केन्द्रित) पश्चिमी जीवन-दृष्टि के उलट एक चराचरवादी सम्पूर्ण जीवन-दर्शन के रूप में अद्वैत वेदान्त की मूलभूत मान्यताओं में मानवीय अनुभव और उसकी अतिक्रामी अभीप्सा **(श्वेतकेतु तत्त्वमसि)** के लिए व्यापकतर अवकाश है। इसमें मनुष्य की गरिमा और उसके उदात्त स्वरूप के प्रतिबोध (प्रतिबोध विदितम्) के साथ-साथ लोकमंगल के लिए सर्वतोभद्र तत्परता और अद्भुत लचीलापन है। मानवीय चेतना के ज्ञानात्मक, संकल्पात्मक और भावनात्मक तीनों ही अभिवृत्तियों को एक साथ और अलग-अलग रूपों में 'परमत्व' प्राप्त होने की इसमें गुंजाईश है। अद्वैत वेदान्त दुनिया का सम्भवतः अकेला ऐसा दर्शन है जिसमें एक दूसरे में न घटित की जा सकने वाली तीनों मानवीय अभिवृत्तियों (Knowing, Willing & Filling) को एक ऐसे परमतत्त्व (ब्रह्म) में समायोजित किया गया जो हमसे बाहर नहीं बल्कि हमारा ही स्वरूप है और इस वास्तविक स्वरूप में 'अहं' और 'इदं', 'मैं' और 'तुम' का तात्त्विक भेद सम्भव नहीं। इतना ही नहीं, समस्त चराचर सृष्टि जो **'मनसाऽपि अचिंत्य रचनारूपस्य'** है वह यद्यपि पारमार्थिक दृष्टि से विवक्षित नहीं **(न हि सृष्ट्यादि पपंचो विवक्षितः)** फिर भी वह सब कुछ जो है वह तथता में ब्रह्म ही है (सर्वं खल्विदं ब्रहम)। यही ब्राह्मिक एकता अथवा सार्वभौमिक एकात्मता (Universal Oneness) ही भगवत्पाद आचार्य शंकर के अद्वैत वेदान्त का मूल प्रतिपाद्य है।

यह कोई महज संयोग नहीं कि भारतीय दर्शन परम्परा में अद्वैतवादी प्रकार के दर्शनों की प्रधानता और बाहुल्य शुरू से ही रहा है। आप देख सकते हैं कि औपनिषद् परम्परा में ब्रह्मद्वैत और उसके विभिन्न संस्करणों का विकास कितना जीवन्त रूप में हुआ। बौद्ध परम्परा यद्यपि अवैदिक परम्परा है फिर भी बुद्ध वचनों के अन्तिम तात्पर्य को शून्याद्वैत और विज्ञानाद्वैत में देखा गया। इसी तरह व्याकरण परम्परा में शब्दाद्वैत का प्रौढ़ प्रतिपादन और **शैवागमीय** परम्परा में स्वतंत्राद्वैत की पार्यन्तिक प्रतिष्ठा हुई है। इतना ही नहीं, यहाँ तो साहित्य शास्त्र का पर्यवसान भी **'रसो वै सः'** अर्थात् रसाद्वैत में होता है। परन्तु भारतीय परम्परा में अद्वैतवादी दार्शनिक प्रवृत्तियों की ऐसी परिव्याप्ति का मतलब यह नहीं कि यहाँ सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक और मीमांसा इत्यादि द्वैतवादी एवं बहुतत्त्ववादी दर्शनों की प्रसिद्धि नहीं रही। अवश्य इनकी भी प्रसिद्धि रही है लेकिन मनुष्य के अन्तरतम में निहित अपने पहचान की जो आत्मचेतन अभीप्सा है, उसके साथ अद्वैतवादी और अद्वयवादी दर्शनों ने जितना न्याय किया है उतना न्याय द्वैतवादी और बहुतत्त्ववादी दर्शन सम्भवतः नहीं कर पाये हैं। ऐसे दर्शनों की प्रतिष्ठा जीवन-दर्शन के रूप में कम और पद्धतिशास्त्र की दृष्टि से अधिक रही है। अतः यह कहने में किंचित् भी अतिशयोक्ति नहीं कि बहुविध प्रकार के अद्वैतवादी दर्शनों ने भारतीय संस्कृति की आत्मप्रतिमा और विश्वदृष्टि को अपने-अपने तरीके से प्रभूत समृद्धि प्रदान की है। विश्व इतिहास में भारत का आध्यात्मिक व दार्शनिक उत्कर्ष तथा विश्वजनीन संस्कृति के अभ्युदय की सम्भावना इन्हीं अद्वैतवादी प्रकार की दार्शनिक प्रवृत्तियों में गोपित है। सम्पूर्ण विश्व में आज भारत के इस महती योगदान को दुनिया के सामने फिर से उद्घाटित करने की महती आवश्यकता है।

परन्तु यहाँ किसी के मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक समय तक अद्वैत की विचारधारा और भावधारा की कई नदियाँ इस भारत भूमि पर प्रस्फुटित होती रही हैं, तब भगवत्पाद आचार्य शंकर प्रणीत **'अद्वैत वेदान्त'** को केन्द्र में रखते हुए उसे अद्वैत परम्परा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण दर्शन क्यों माना जाय ? वास्तव में इस प्रश्न को गम्भीरता से समझने की जरूरत है। भारतीय परम्परा में जब **'वयं अद्वैतवादिनः'** कहने की होड़ लगी हो तो अद्वैत के परिनिष्ठित और परात्पर स्वरूप के दावे का निर्धारण किस प्रकार किया जाय। ध्यातव्य है कि प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र) को पृष्ठभूमि में रखकर भगवत्पाद आचार्य शंकर प्रणीत 'कैवलाद्वैत' के पश्चात् विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत और द्वैताद्वैत इत्यादि अनेकों प्रस्थान विकसित हुए हैं। अद्वैती प्रस्थानों के विकास का यह क्रम आज भी जारी है और उनकी पहचान स्वामी नारायण सम्प्रदाय के परुषोत्तमाद्वैत, उड़ीसा में विकसित हुए 'महिमाद्वैत' और महाराष्ट्र में पल्लवित हो रहे 'पूर्णाद्वैत' तथा महामति प्राण्नाथ के द्वारा बुन्देलखण्ड और गुजरात मे प्रचारित 'सलिलाद्वैत' के रूप में की जा सकती है। परन्तु देखने लायक जो बात है वह यह कि अद्वैत के ऐसे सभी प्राचीन और अर्वाचिन प्रारूपों की आत्मा एक है और वह है – एकमेवाद्वितीयम्। यह एक ऐसा श्रुतिसम्मत आदर्श है जो अद्वैत का अपने-अपने तरीके से दावा करने वाले सभी सम्प्रदायों का समान रूप से स्वीकृत पक्ष है।

भगवतपाद आचार्य शंकर ने **'एकमेवाद्वितीयम्'** के साथ **'नेहनानास्ति किंचन्'** की श्रुति की संगति बैठाकर पारमार्थिक अद्वैत और मायिक द्वैत का प्रतिपादन किया है। रामानुजाचार्य **'एकमेवाद्वितीयम्'** के साथ **'यः सर्वभूतेषु तिष्ठन्...'** का योग दिखाकर विशिष्ट अद्वैत और विशेषण-विशेष्य द्वैत का प्रतिपादन करते हैं। मध्वाचार्य **'एकमेवाद्वितीयम्'** के साथ

'**ज्ञाज्ञौ द्वावजा वीशानीशौ**' नामक श्रुति रखकर औपचारिक अद्वैत और पारमार्थिक द्वैत का विधान करते हैं। महाप्रभु, वल्लभाचार्य '**एकमेवाद्वितीयम्**' के साथ '**तद् ऐक्षत बहुस्यां प्रजायेय**' का योग दिखा कर स्वाभाविक अद्वैत एवं ऐच्छिक द्वैत को उद्घाटित किया है। अतएव कहा जा सकता है कि अद्वैत का विचार भारतीय परम्परा में एक कल्पवृक्ष के समान है और निगमागमिक स्त्रोतों से विकसित इसकी अनेक शाखाएँ '**रूचीर्नां वैचित्त्याद् दृजुकुटिल नाना पथजुसां**' की सर्वसमावेशी भावभूमि पर विकसित हुई हैं। परन्तु '**एकमेवाद्वितीयम्**' का जो श्रौत आदर्श है उसका सर्वाधिक सुसंगत रूप भगवत्पाद आचार्य शंकर के अद्वैत वेदान्त में ही प्राप्त होता है। यही कारण है कि दार्शनिक विवादों और '**संसारासार कथन कुशलाः**' जैसे आरोप-प्रत्यारोपों के बावजूद भी अद्वैत वेदान्त को ही यहाँ सर्वाधिक सांस्कृतिक स्वीकृति प्राप्त हुई है। यही भारत के सांस्कृतिक मानस को निर्मित करने वाला मानो राष्ट्रीय दर्शन है। वास्तव में देखा जाय तो, अद्वैत वेदान्त ही भारत के स्वराज का दर्शन रहा है। भारत के समक्ष जब कभी भी सांस्कृतिक चुनौतियाँ उपस्थित हुई, तब-तब अद्वैत वेदान्त की चिन्तन धारा ने देश, काल और परिस्थिति के अनुरूप अपना कायाकल्प किया है। एक समय जब पूरा भारत बौद्ध संघ में रूपान्तरित होकर चीवर के निवृत्तिवादी रंग में रंगता जा रहा था तो संसार को असार कहने में कुशल 'अद्वैतवेदान्त' ही भारत के सांस्कृतिक एकीकरण का दर्शन बनकर उभरा। इसी तरह मुगलकालीन सांस्कृतिक त्रासदी से इस देश को उबारने और उसकी सांस्कृतिक शुद्धता को बनाये रखने में अद्वैत वेदान्त को ही पूर्व पीठिका बनाकर वैष्णव वेदान्त के दार्शनिक सम्प्रदायों ने भक्ति आन्दोलन को सांस्कृतिक संरक्षण का ढाल बनाया। इतना ही नहीं बल्कि संत परम्परा का सम्पूर्ण भावबोध और मूल्यबोध अद्वैतवाद की प्रखर दार्शनिक चेतना से आपूरित रही है। वैसे ही ब्रिटिशकालीन भारत में भारतीय जनमानस को परतन्त्रता की लम्बी त्रासदी और गुलामी की भस्मीभूत कर देने वाली लूम-लपट से बचाने के लिए अद्वैत वेदान्त ही भारतीय पुनर्जागरण का दार्शनिक आधार बना। इस पुनर्जागरण के अग्रदूत राजाराम मोहनराय, महर्षि दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर और महात्मा गांधी इत्यादि के हाथों अद्वैत वेदान्त ही नववेदान्त के रूप में पुनर्सृजित होकर न केवल भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन को वैचारिक आधार प्रदान किया बल्कि भारतीय स्वराज का दर्शन बनकर प्रतिष्ठित हुआ।

अतः अद्वैत वेदान्त ही '**एकमेवाद्वितीयम्**' के श्रौत आदर्श का स्वरूप लक्षण है और अद्वैत का दावा करने वाले वेदान्त के अन्य सम्प्रदायों और 19वीं-20वीं शताब्दी में नववेदान्त के रूप में हुई आधुनिक पुनर्रचनाओं को उसका तटस्थ लक्षण कहा जा सकता है। शंकर वेदान्त के पश्चात् वेदान्त के अन्य सम्प्रदायों तथा आधुनिक पुनर्रचनाओं को अद्वैत वेदान्त का तटस्थ लक्षण कहने का तात्पर्य यह है कि इनकी पहचान देश-काल और परिस्थिति की माँग के अनुसार अद्वैत वेदान्त के ही युगीन रूप में की जा सकती है। इन सबों की मौलिक प्रेरणा का स्त्रोत अद्वैत वेदान्त ही रहा है। अतः इन्हें अद्वैत वेदान्त का ही युगानुरुप परिष्कार कहा जाना चाहिए।

भगवत्पाद आचार्य शंकर ने **तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि, प्रज्ञानंब्रह्म** और **अयमात्माब्रह्म** नामक चार महावाक्यों के द्वारा एक तरह से '**एकमेवाद्वितीयम्**' के श्रोत आदर्श को ही आत्मार्पित किया है। '**एकमेवाद्वितीयत्**' और '**सर्वंखल्विदंम् ब्रह्म**' के श्रौत आदर्श को जब '**अहं ब्रह्मास्मि**' से आत्मार्पित किया जाता है तभी हमें सार्वभौमिक एकात्मता के जीवन-दर्शन की एक कसौटी प्राप्त होती है। इस कसौटी पर भगत्वपाद शंकर के '**विवर्तवाद**' को ठीक से न समझे जाने के कारण उसे बहुत अधिक आलोचना का विषय बनाया गया। आलोचनात्मक स्वर में तो यहाँ तक कह दिया जाता है कि भारत की लम्बी परतन्त्रता के लिए जिम्मेवार क्लीव मानसिकता की निर्मिति अद्वैत वेदान्त के मायावाद के कारण ही हुई है। जबकि वास्तविकता यह है कि अद्वैत वेदान्त एक ऐसे दार्शनिक आधार को प्रस्तुत करता है जिसके बिना जीवन और जगत् की '**बायनेरी**' समझ का अतिक्रमण नहीं किया जा सकता। वैसे अद्वैतवादी दर्शन जो विवर्तवाद के बदले ब्रह्मपरिणामवाद का समर्थन करते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि जीवन और जगत् की बायनेरी तथ्यात्मकताएँ भी ब्रह्म का परिणाम होने से सत् होंगी और तब उन्हें झुठलाया जाना सम्भव नहीं होगा। इस तथ्यात्मकता को झुठलाने के लिए सत्ता के व्यवहार और परमार्थ का स्तरभेद एक अनिवार्य दार्शनिक अपेक्षा है। इस अपेक्षा को भगवत्पाद शंकर का अद्वैत वेदान्त ही सर्वाशतः पूरा करता है। आज कल तो ब्रह्मपरिणामवाद के तर्ज पर भौतिक विज्ञान में भी सार्वभौमिक एकता का जड़ाद्वैती दावा किया जाता है। परन्तु सार्वभौमिक एकता के भौतिक दावे और सार्वभौमिक एकात्मता के आध्यात्मिक दावे में आसमान-जमीन का अन्तर है। एक में हमारी चेतना विषयोन्मुखी रूप से प्रवर्तित होती है तो दूसरे से आत्मोन्मुख जीवन-दर्शन फलित होता है। विषयोन्मुखता अन्ततः देह-वासना की सम्पूर्ति में निरत एक अन्तहीन साधना है और इसका आदर्श प्रकृति पर विजय प्राप्त करना ही हो सकता है। परन्तु आत्मोन्मुख जीवन-दर्शन 'आत्म जय' की साधना है और इसका उद्देश्य 'आत्मवत् सर्वभूतेषु की सरमा-दृष्टि है। इसी के द्वारा विषयासक्त चेतना के कल्मषों का अपवारण सम्भव हो पाता है और हाँथी भी ब्रह्म है और उस पर बैठा महावत भी ब्रह्म है- इस प्रकार का व्यावहारिक अद्वैत-विवेक सहज रूप से हमारे जीवन में क्रियाशील हो उठता है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आज हम साभ्यतिक विकास के जिस दहलीज पर खड़े हैं और पूरी मानवता जिन आस्तित्वात्मक समस्याओं का सामना करने के लिए विवश है, वह सबके सब जीवन और जगत् की बायनेरी समझ के कारण ही उत्पन्न हुई हैं। इन समस्याओं को यदि विषयोन्मुखी जीवन-दृष्टि का प्रतिउत्पाद कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस समझ ने आज पूरी दुनिया को अतिरेकों और अतिमारकता की टकराहट और संघर्ष में बदल कर रख दिया है। यह मानव सभ्यता के समक्ष उत्पन्न हुआ एक तत्त्वमीमांसीय संकट है। आज दुनिया को इस त्रासद स्थिति से उबार पाने के लिए सार्वभौमिक एकात्मता के एक ऐसे दर्शन की आवश्यकता है जिसका साभ्यतिक दृष्टिकोण 'सेल्फ' एण्ड 'अदर' की बायनेरी समझ पर आधारित न हो। इस संदर्भ में यदि भगवतपाद शंकर के अद्वैत वेदान्त की वैश्विक उपादेयता पर विचार करें तो उसकी भूमिका एक तारक-दर्शन के रूप में सामने आती है। अतः अद्वैत वेदान्त की विश्वजनीन साभ्यतिक एवं सांस्कृतिक उपादेयता के प्रति यह कहना सर्वथा समीचीन होगा कि -

The era we are living in is fraught with the clash of civilization, anthropocentric destructive development, environmental degradation, fundamentalism and verities of intolerance. The genesis of these crisis is rooted in the 'Binary Understanding of Self and Other'. A metaphysical and epistemological paradigm shift is essentially required to effectively undo these problems and their consequences'. Acharya Shankar's Advaita Vedanta provides an inclusionary and echo-logical (not ecological) weltanschauung for this paradigm shift through the Philosophy of Universal Oneness.

- लेखक आचार्य एवं अध्यक्ष है, दर्शन विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) -470003, मो.: 9406519498

श्रद्धांजलि

पूज्य स्वामी संवित सोम गिरी जी पंचभूत में विलीन

पूज्य स्वामी संवित सोम गिरी जी पंचभूत शरीर का त्याग कर शिवतत्व में समाहित हो गए। पूज्य स्वामी जी आचार्य शंकर सांस्कृतिक एकता न्यास के ट्रस्टी थे। उनकी अनंत स्मृतियों को मेरा प्रणाम!

– मा. शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री, म.प्र. शासन के ट्वीटर वाल से साभार

पुस्तक विमर्श

नवगीत-गीतकार यतीन्द्रनाथ 'राही'
(रेत पर प्यासे हिरन के सन्दर्भ में)

प्रबंधकाव्य की भाँति गीतिकाव्य की भी हिन्दी में एक सशक्त धारा हैं जो अनन्त से लेकर अब तक सतत् प्रवाहमान रही हैं। गीति काव्य रचयिताओं ने समय-समय पर अपने आन्तरिक बोध, अभिव्यंजना क्षमता के अनुरूप अपने भावों को अपने गीतों के माध्यम से प्रवाहित किया है। गीति परम्परा का प्रस्फुटन जन साधारण के लोकगीतों से हुआ, ये मन के उमड़ते गीत। अपभ्रंश के सिद्ध एवं नाथ पंथी कवियों ने भी गीतों के माध्यम से आत्मानुभूति को प्रकट किया है। इसी तरह संस्कृत कवि जयदेव, मैथिल में विद्यापति कवियों ने भी अपने काव्य को संगीतमय रूप प्रदान किया। आगे चलकर मध्यकाल के संतों एवं भक्तों ने भी इसी शैली के माध्यम से अपनी भावात्मक अनुभूतियों को व्यक्त किया।

आधुनिक काल में छायावादी कवियों ने गीति विधा को सर्वोपरि महत्व प्रदान करते हुए नयी वस्तु, नूतन संवेदना से गीति परम्परा को कायम रखा। यद्यपि प्रगतिवाद, प्रयोगवाद में छायावादी कवियों की भाँति वैयक्तिकता, कल्पनाशीलता नहीं थी, परन्तु उनके काव्य में भी मुक्तक के साथ-साथ गीति शैली को भी खुलकर अपनाया गया। साथ ही परम्परागत गीतिशैली को नया रूप भी प्राप्त हुआ यह रूप था, लोकजीवन की संवेदना एवं अभिव्यंजना को गीतों के माध्यम से व्यक्त करना।

नयी कविता तक आते आते नये गीतों में जनसाधारण की रूचि के अनुकूल गीतों की रचना की जाने लगी। नये गीतों में बौद्धिकता, दुरूहता व शुद्धता का सर्वथा आभाव रखा जाने लगा। शुष्क मुक्तकों के स्थान पर सरल, सहज, प्रवाहपूर्ण गीतों की रचना की जाने लगी। नवगीतों में गीतकार समाज को खुली आँखों से देखता है तथा उसके उपरान्त अपनी प्रतिक्रिया को व्यक्त करता है। आज के नवगीतों में बौद्धिकता, यथार्थता, लौकिकता की प्रमुखता है। नवगीत में जनसाधारण में प्रचलित सामान्य भाषा तथा ग्रामीण क्षेत्रों की शब्दावली का भी खुलकर प्रयोग किया गया है। प्रगतिवादी कवियों की भाँति नवगीतकार घोर वैयक्तिकता से ग्रस्त न होकर सामाजिक यथार्थ के प्रति सजग हैं। ये जीवन से पलायन न कर संघर्ष से जीने को महत्व देते हैं। आदरणीय श्री यतीन्द्रनाथ 'राही' जी के गीतों में भी इसी तरह की गूंज सुनाई देती है। राही जी ने अपने गीतों में वर्तमान, सामाजिक, परिवेश की विषमताओं, विसंगतियों, विद्रूपताओं, मूल्यों का क्षरण, भारतीय सभ्यता का पतन, आम आदमी का जीवन संघर्ष, शोषण, उत्पीड़न को जागरूक रचनाकार की तरह अभिव्यक्त किया हैं। राही जी ने अपने गीतों में इन चुनौतियों को स्वीकार कर अपनी अभिव्यक्ति के तीखेपन से इसे अभिव्यक्त किया है। राही जी की रचनाएँ समाज को एक ओर झकझोरती हैं तो दूसरी ओर जागरण का संदेश देती है। अपनी इस आयु में भी वे समाज के लिये एक स्तम्भ की भाँति हैं। उनकी जीवन्तता, जीवन जीने की कला, समाज व देश के प्रति चिन्ता, जागरूकता हमें सोचने को विवश करती है।

आपकी जीवन्तता का बोध कराने वाले आपके गीत समाज के

समस्त आयु वर्ग के लोगों की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। आपके शब्दों में सरलता, संगीतात्मकता की सहज ध्वनि है। वर्तमान समाज की व्यथा कथा व करुणा है। आपके गीतों में गहराई हैं। भारतीय दर्शन, सभ्यता, संस्कृति के विविध रंग हैं। आपके गीतों में वर्तमान में व्याप्त राजनीतिक व्यवस्था, षड्यंत्रों, व्यवस्था के दोगलेपन के प्रति आक्रोश है और निरीह करुणा है आरै उसे वह बड़ी ही निर्भीकता से व्यक्त करते हैं। वे एक श्रेष्ठ गीतकार हैं। इनके अब तक कई गीत संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। जिनमें पुष्पांजलि (काव्य संग्रह), बांसुरी (काव्य संग्रह), तितली बादल मोर कबूतर (बाल-गीत), दर्द पिछड़ी ज़िन्दगी का (काव्य संग्रह), रेशमी अनुबंध (गीत-ग़ज़ल), बाँहों भर आकाश (काव्य संग्रह), महाप्राण (खण्डकाव्य), अंजुरी भर हरसिंगार (गीत संग्रह), घरौंदे रेत के (दोहा संग्रह), कुहरीले झरोंखों से (काव्य संग्रह), चुप्पियाँ फिर गुनगुनाई (गीत नवगीत), काँधों तले तुमुल कोलाहल (गीत/नवगीत), ज़िन्दगी ठहरी नहीं है (गीत/नवगीत),रेत पर प्यासे हिरन (प्रस्तुत गीत संग्रह)। आपके गीत/नवगीत संग्रह **'रेत पर प्यासे हिरण'** के गीतों में कवि ने जहाँ धर्म के नाम पर शोषण करने वालों पर नेताओं पर कठोर कटाक्ष किया हैं वहीं वर्तमान समाज में महिलाओं व बेटियों की असुरक्षा पर भी प्रश्न उठाया हैं। आपके 'रेत पर प्यासे हिरन' गीत संग्रह के प्रत्येक गीत अपनों उपादेयता व सार्थकता को प्रामाणित करते हैं।

इस संग्रह का पहला गीत 'ओंकार' के लिये के स्वयं ही कहते हैं, कि यह गीत अनेक बार गाकर भी अनगाया ही रहा है। अपने इस गीत के माध्यम से उन्होंने ओंकार के महत्व को स्पष्ट किया है। वे कहते है कि प्रकृति के हर कण-कण में ओंकार व्याप्त है। माँ के आँचल में, श्रम के पसीने में, शिशु की आँखों में, मूरत में, प्यास में, वही निराकार ओंकार है तुम उसे खोजते हो दरबदर परन्तु वह ब्रह्म तो तुम्हारे स्वयं के पास है बहुत ही सरल अभिव्यंजना के माध्यम से भारतीय संस्कृति के ब्रह्म की व्याख्या को जनसाधारण की समझ के तरीके से कवि ने आसान, सरल शब्दों में समझाया है। उनके इस गीत की सरलता, सहजता ने मुझे गहराइयों से छुआ है। उनका यह दार्शनिक गीत इस प्रकार है.....

जो प्रणव इस चराचर में साकार है,
सूक्ष्मतम रूप उसका ही ओंकार है।।
निर्झरों में वही बह रहा है तरल,
खिल रहा है वही कीच में बन कमल

झर रहा है वही गंध मकरकन्द में
घुल रहा है वही गीत में छन्द में
उपवनों में जो कलरव हे गुंजार है,
सुन सको तो वही नाद ओंकार है।
– ओंकार, पृष्ठ सं. 25

राही जी के गीत सामाजिक यथार्थ के प्रति सजग गीत है। ये गीत जीवन से पलायन करने की अपेक्षा संघर्ष को महत्व देते हैं उनके कुछ गीत....

ये पहाड़ पत्थर ही पत्थर
स्वयं पी गए जल की धारें
बादल बहरे कहाँ सुनेंगे
किसी तृषित की करुण पुकारें
अभी पंख हैं फिर रुकना क्या ?
मंज़िल से पहले, थकना क्या ?
क्षितिजों के उस पर चलें हम।
एक गीत
लिख आएँ गाकर।
–एक घरौंदा यहाँ रेत पर, पृष्ठ सं. 29

उनके गीतों में आत्मदृष्टि नहीं, युगदृष्टि की प्रधानता है। उनके इस गीत में युवाओं को आत्म विश्वास से भरकर उठने को कह रहे है कि उठो मंजिलें दुर्गम है, फिर भी अन्याय के खिलाफलड़ाई के लिये संकल्प भरकर उठो और अन्धे न्याय के मूकदृष्टा न बनो। नारी सशक्तिकरण पर उनका यह गीत.....

हार कर
बैठो न पथ पर तुम!
बहुत हैं
मंज़िलें दुर्गम
उठें है पत्थरों के सिर
कहीं
चट्टान की फ्सिलन
कहीं पर दलदलों के डर
बबूलों नागफनियों कीकरों के
घोर अन्धे वन
उलझते काँपते हैं-टूटते हैं
आदमी के मन
चली थीं
मुट्ठियों में शक्ति के
संकल्प भरकर तुम!
न बाँधो पट्टियाँ
गान्धारिका हर्गिज नहीं हो तुम
सदा सस्कारिता पथ चारिका
युग-युग रही हो तुम
न्याय अन्धा, मूकदृष्टा
भ्रष्ट दु:शासन
तन बिका हो
आदमी का
जब बिका हो मन
तब उठो! नवक्रान्ति की
हुंकार बन कर तुमु।
–बैठे न पथ पर तुम! पृष्ठ सं. 37

राही जी ने अपने गीतों की रचनाशैली एवं अभिव्यंजना के क्षेत्र में नूतन प्रयोग किया है। आपने 'प्रणय गीतों'' के साथ राष्ट्रीय, प्रगतिशील और प्रयोगशील गीतों की रचना अपनी समन्वय शक्ति का परिचय दिया हैं। उनके प्रकृति चित्रण से सम्बन्धित छायावादी-रहस्यवादी निकाय का एक दार्शनिक गीत इस प्रकार है.....

सोहर गाए सोन चिरैया।
कागा सगुन मुँडेरी पर
लिख-लिख नाम बाँचती गोरी,
मेंहदी रची हथेली पर
अलगोझे पर तान किसी की
थिरके कहीं किसी के पाँव।
नाते-रिश्ते मानक-मोती
प्यार रेशमी धागों में
कन्ठ-हार देना ही देना
मन के राग-विरागों में
सारे तीरथ
सकल पदारथ
विधि ने रचे, एक ही ठाँव।
सरसों फूली
महूआ महके
नंदन वन सा मेरा गाँव।
– मेरा गाँव, पृष्ठ सं. 39
झूमूकर खिल उठे
ज़िन्दगी का सुमन
गीत गाने लगे खुशबुओं के पवन
पंथ पावन बने छू तुम्हारे क़दम
तुम चलो तो, मिटें
मंज़िलों के भरम
एक पल ही सही
खुशनुमा कर चलो!
–कर चलो, पृष्ठ सं.40

उनका '**लाडली**' गीत बेटियों के लिये समर्पित है। जिस बेटी के आने से घर स्वर्ग बन जाता हैं। माँ धन्य हो जाती है। आँगन में गंगाजली के समान झनक उठती है। उसकी किलकारियों से सिन्धु भी उमड़ने लगता है। बेटियों की कितनी मधुर तुलना राही जी ने की है। अन्याय के प्रति उनकी वाणी में गहरा क्षोम भी हैं.....

फिर,
तरसी वही बूँद भर प्यार को

वंचिता-शोषिता आग में जल मरी
क़त्ल होती रही
कोख में ही कभी
पाप ढोती रही पीर की सहचरी
मंदिरों तीरथों में रहे खोजते
गेह में ही उपेक्षित
रही लाडली।

-लाडली, पृष्ठ सं. 47

नारी के व्यथा को भी उन्होंने जैसे स्वयं महसूस किया है। उनकी कोमल भावनाओं में नारी के प्रति कितना सम्मान है उनकी इस कविता में दिखाई पड़ता है.....

ओठ सिले,
मन मार न जाने
कितने अवसर बीते,
अर्थ ज़िन्दगी का रहना क्या
केवल आँसू पीते ?

-केवल आँसू पीते, पृष्ठ सं. 48

वर्तमान समाज में बेटियों, महिलाओं की घटती इज्जत उनके साथ होने वाली बर्बर घटनाये, बलात्कार ने कवि को आन्तरिक मन से झकझोर दिया है और आज की परिस्थिति के लिये उन्होंने हम सभी को जिम्मेदार ठहराया है। हमारे बोलने अपने आदर्शों को याद करने का नहीं बल्कि स्वयं उठ कर उन आदर्शों की स्थापना का समय अब आ गया है। वर्तमान सामाजिक समस्याओं को उन्होंने अपनी कविता में बखूबी उठाते हुये सिर्फ अपनी पीड़ा ही नहीं व्यक्त कि है बल्कि उसको खत्म करने के लिये युवा पीढ़ी को जाग्रत भी किया हैं।

आपके गीतों में पीड़ा है वेदना है, समकालीन समाज के बदलते परिवेश की समाज में खत्म होती मनुष्यता सामाजिक बंधन उनकी निम्न पंक्तियों में दिखलाई देती है.....

उठ गया विश्वास
लगता अब नहीं कोई सगा है
प्यार में वात्सल्य में भी
दिख रहा अब तो दगा है
भेड़ियों का शहर है यह
लम्पटों का देश है
अब नहीं लगता सुरक्षित
गाँव का परिवेश है
कौन, कब, किस मोड़ पर
आकर छलेगा।

-सिर धुनता एक गीत, पृष्ठ सं. 91

समय आ गया है, कि हम अपनी भारतीय संस्कृति को जाने। वर्तमान समय में हमारा देश किस दिशा में जा रहा है हम उस पर गर्व करे या शर्म करें। जो भारत देश संस्कृतियों का जनक माना जाता हैं आज स्वयं वह काले अधियारों में भटक रहा है। उनके इस गीत में देश में काली करतूते करने वाले लोगों के भ्रष्टाचार का उद्घाटन अत्यंत सशक्त रूप में हुआ है। विभिन्न राजनीतिक स्थितियों की प्रतिक्रिया तीखी आलोचनात्मक एवं व्यग्यांत्मक शैली में व्यक्त करना राही जी के स्वभाव का अंग है। अपने देश की वर्तमान स्थिति से वे व्यथित होकर लिखते है.....

काला धन काली करतूतें
हैं काले परिवेश
काले अँधियारों में भटका
आँखें मलता देश
रोज़ नए थोथे आश्वासन
इंद्रधनुष सपनों के
सूरजमुखी किरन उजलाती
घर, अपनों अपनों के
कहें, सदी का स्वर्ण सबेरा
या, युग का अवसान ?

-गर्व करें या शर्मसार हों पृष्ठ सं. 89

आज हमारे देश की राजनीति इतनी गिर गई, जो देश की चिन्ता न करके दिन रात शतरंजी मुहरें चलते हैं। उनकी 2013 में लिखी कविता वर्तमान राजनीति पर कितनी सटीक बैठती हैं देखें.....

पत्थर फेंक रहे है घर में
दुष्ट पड़ोसी छोरे
और पलटते रहे पृष्ठ हम
आदर्शों के कोरे
नहीं भारती बाँझ
न शीतल हुई
रक्त की ज्वाला
इतिहासों ने लिक्खा है
भूगोल बदलने वाला
महिषासुर के साथ लिखा है
दुर्गा का आख्यान।

-रेत पर प्यासे हिरन, पृष्ठ सं. 90

गीत की पंक्तियों में वे देश के युवाओं को अपनी शक्ति को जाग्रत करने के लिये कहते हैं वे लिखते हैं वर्तमान की जो व्यवस्था है उसके दोषी हम स्वयं हैं। यह जो सामाजिक व्यवस्था है एक वस्त्र के समान हैं वे युवाओं का आह्वान करते हुये कवि कहते हैं कि तुम अपनी नवशक्तियों को जाग्रत करो उठो और यह व्यवस्था बदल दो प्रार्थनाओं से कुछ नहीं मिलने वाला अपने प्रबल पुरुषार्थ से हमें अपने देश की सूरत नहीं सीरत बदलना हैं। फैंक दो मोमबत्तियों को अपनी अंदर की आग को प्रज्वलित करों अब यहाँ किसी मासूम अबला की इज्जत नहीं लुटनी चाहिये। भारत के नौजवानों का आह्वान करते हुये वे लिखते हैं.....

मत रहो, सिर थाम बैठे
तुमु उठो! कुछ तो करो!
चेतना जाग्रत करो
नवशक्तियाँ संचित करो!
यह व्यवस्था

यह चलन
क्या हम स्वयं दोषी नहीं
इस घृणित वीभत्सता के
क्या हमी पोषी नहीं ?
यह व्यवस्था वस्त्र है
तुमु बदल सकते हो।
मुट्ठियों में ताज औ, तुम तख्त रखते हो
उठ चलो! इस तत्रं को
सद्आचरण मंडित करो।

–रेत पर प्यासे हिरन, पृष्ठ सं. 93

उनकी '**शरदागमन**' कविता में शरद के स्वागत् की तैयारी के साथ उन्होंने विजय के पर्व की पूजा के साथ सभी को अपने आपको भी सम्भने के लिये कहा हैं कवि कहते हैं.....

गया मौसम,
घटाएँ छुप गयीं गहरे समन्दर में
और चाँदी के बिछावन
बिछ गए हैं नील अम्बर में
विजय का गर्व पूजा शस्त्र की
है शक्ति आवाहन
सँभालो पर्णकुटियों को
खड़ा है द्वारा पर रावण
बड़ी मनहर है माया
स्वर्ण–मृग की नयी नस्लों की।

–रेत पर प्यासे हिरन, पृष्ठ सं. 95

'**शरदागमन**' कविता में कवि ने धर्म के ठेकेदारों द्वारा साधारण जनता को ठगे जाने उनके असली चेहरे को दिखाया हैं वही वे जिन्दगी को इन सब बातों से बचते हुये जीने के लिये झूमने के लिये भी कहते हैं।'**अब विश्वास करें** हम किस पर' गीत में कवि ने राजनीतिक व्यवस्था व नेताओं की गिरती हुई मनुष्यता उनकी सत्ता के लिये किसी भी स्तर पर गिर जाना, राजनीतिज्ञ की कुण्ठित मानसिकता पर प्रहार किया हैं।

कितना गिरा आदमी नीचे
अब विश्वास करें हम किस पर ?
चौराहों पर बड़े–बड़े कद
मंचों से भाषण औ प्रवचन
सुने बहुत श्रद्धा से हमने
आने लगी, किन्तु अब तो घिन
उमड़े हैं सैलाब कि,
कायाकल्प व्यवस्था का कर देंगें
नव समृद्धि बरस जाएगी
दुख–दारिद्र–दैन्य हर लेंगे
कहते थे वे भी ऐसा ही
दली मूँग
छाती पर चढ़कर।

–अब विश्वास करें हम किस पर, पृष्ठ सं. 97

आपके गीतों में दर्द है किसानों का मजदूरों का, सफाई कर्मचारियों का उनकें सपने है उनकी भूख हैं, प्यास हैं उनके मन की मार्मिक व्यथा को कवि ने '**कभी दूधों नहाए हैं**' कविता में कुछ इस तरह उभारा हैं.....

उघारे भी पलक कब थे
कि दामन में भरे काँटे
कभी तपती दुपहरी
गाल पर आ धर गयी चाँटे
पसीने को बनाकर अर्घ्य
अर्पित ज़िन्दगी कर दी
तरसते बूँद को हम हों
तुम्हारी गागरी भर दी
हरित त्रण
धान्य–फल–पादप लता
उपवन उगाए हैं।

–कभी दूधों नहाए हैं, पृष्ठ सं. 102

अपनी 'पिंजरा–धर्म' कविता में बड़ी बखूबी से चापलूसों की पोल पट्टी खोली है।

डाल–डाल दाने की भटकन
कोटर की वह अन्धी कुटिया
भूल जाओ अब तो तुम प्यारे
फटी गोदड़ी टूटी खटिया
पंखों का विश्राम
प्लेन में,
तुम्हें लक्ज़री क्लास मिलेगा
इस छोटी दुनिया के बाहर
तुम्हें नया ससांर दिखेगा
यस सर! नो सर! जी हुजुर की
मिश्री इस वाणी में घोलो!

–पिंज़रा–धर्म, पृष्ठ सं. 106

यद्यपि भारत को स्वतंत्र हुये एक लम्बी अवधि हो चुकी है तथा गरीबी, बेकारी और महँगाई को दूर करके समाजवाद की स्थापना की घोषणा बार–बार हो चुकी है, फिर भी वास्तविकता यहा है कि स्वतंत्र भारत में गरीब व्यक्ति और गरीब होता जा रहा है तथा अमीर व्यक्ति और अमीर। विभिन्न सरकारी योजनाओं एवं आन्दोलनों के बावजूद आम आदमी की रोटी, कपड़ा और मकान की न्यूनतम आवश्यकता पूरी नहीं हो पा रहीं हैं। इस स्थिति का उद्घाटन आपकी कविताओं में बखूबी हुआ है। आपकी कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विषमताओं, असंगतियों एवं विवशताओं का अंकन हुआ है अपितु आपकी कविताओं में सामाजिक क्रान्ति का एक व्यापक उद्देश्य भी अन्तर्निहित हैं। आपका अपने युग के सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति पूर्ण सजगता का समावेश भी आपके गीतों में दिखलाई देता हैं। आपके गीत 'सोचते हो खड़े' में हौसलों को बुलन्द करने की प्रेरणा दी है.....

जूझना है,

तो क्या सोचते हो खड़े
डर गए आहटों से
तो मर जाएँगें।
हौसले हों मुकम्मल
तो चट्टान क्या
पर्वतों के शिखर भी
झुका लेंगे हम
भार कितना भी भारी हो
दायत्व का,
प्राण देकर भी
सर पर उठा लेंगे हम
हम तो मनु हैं
महासिन्धु प्लावन में भी
नाव अपनी सुरक्षित
बचा लाएंगे।

–सोचते हो खड़े, पृष्ठसं. 100

आपके गीतों में आधुनिक जनतंत्र पर आक्षेप किया गया है। आधुनिक जनतंत्र जो जनता के हित के लिये शासन करता है, किन्तु व्यावहारिक स्थिति इसके विपरीत है। आज जनतंत्र में अनेक खामियाँ आ गयी हैं। आज दुर्योधन व दु:शासन द्वारा रामराज्य के स्वप्न दिखलाये जा रहे हैं। आज की राजनीति में केवल स्वार्थ पढ़े जा रहे हैं। हर चेंहरे पर नकाब हैं। इंसानियत मर चुकी हैं। संवेदनाएँ पथरा गयी हैं आज जरुरत है परिवर्तन की, परन्तु वह परिवर्तन कौन लायेगा गीतकार की चिन्ता आपके गीत **'उत्तर कौनैन धरेगा ?'** में स्पष्ट देखी जा सकती है.....

अपने-अपने राजमुकुट हैं
अपने-अपने सिंहासन हैं
रामराज्य के स्वप्न दिखाते
दुर्योधन हैं दु:शासन है
पटक रहे हैं पाँव विदुर जी
भीष्म मुट्ठियाँ भीच रहे हैं
षड़न्त्रों के कुटिल पंथ पर
धर्मराज रथ खींच रहे हैं
महा समर है
विजय-माल कल,
देखें, कौन महान् वरेगा ?
है ऊँचे आदर्श सभी के
बड़ी -बड़ी मज़हबी किताबें
केवल स्वार्थ पढ़े जाते हैं
हर चेहरे पर चढ़ी नक़ाबें
मरती हुई आदमीयत पर
धरता पथराए सवेंदन
किसी महाभ्रम में भटका सा
डोल रहा सारा जड़ चेतन
परिवर्तन के महाकल्प की
महासर्जना कौन करेगा ?

–उत्तर कौन धरेगा ? पृष्ठ सं. 125

अपके गीत **'फटी चादरें सीते-सीते'** में गीतकार ने महन्तों, मठाधीशों, राजनीतिज्ञों की बेशर्मी का पर्दाफास किया हैं कि वे किस तरह पैबन्द लगा लगाकर अपनी बेशर्मी को ढकते हैं–

उमर गुजारी
यों ही ऊधो
फटी चादरें सीते-सीते
चदर भी क्या करे बिचारी
हैं बेशर्म ओढ़ने वाले
इनके ही नीचे होते हैं
उनके रात और दिन काले
ये कुछ, राज महल से आई
फटकर उलझे तार-तार है
नुची नुची सड़क पर जो बेचारी
ऐसी भी तो बेशुमार हैं
इन्हें देखते और समझते
विसरे अपने
सब मन-चीते।

– फटी चादरें सीते-सीते, पृष्ठ सं. 128

आपके गीतों में भाषा-शैली में जहाँ छायावादी कवियों की भाँति कोमल कान्त पदावली व संगीतात्मकता का आग्रह है। वहीं जन साधारण में प्रचलित सामान्य भाषा तथा ग्रामीण एवं आँचलिक क्षेत्रों की शब्दावली का भी प्रयोग खुलकर किया गया है।

आपके गीतों में घोर वैयक्तिकता न होकर सामाजिक यथार्थ को महत्व दिया गया है। जीवन से पलायन न कर संघर्ष को महत्व दिया गया है। राही जी सामाजिक परिवर्तन नवनिर्माण की बात सोचते हैं। आपके गीत कलात्मक दृष्टि से भी विकसित, प्रौढ़ एवं प्रभावशाली हैं। आपके गीतों में प्रगतिवादी राजनीतिक चेतना है। युगीन परिवेश की गुंज हैं। उन्होंने अपने गीतों में जनसाधारण की भाषा का उनके मन में उठने वाले भावों का सहज चित्रण किया। वर्ड्सवर्थ ने सही लिखा है कि जनसाधारण की भाषा में रचित कविता ही आम जनता के भावों का वहन कर सकती है। राही जी के नवगीतों में ग्रामीण एवं आंचलिक जीवन की संवेदना, महानगरीय जीवन की संवेदना, पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन की विभिन्न विषमताओं असंगतियों एवं विद्रूपताओं को उद्घाटित करने की दृष्टि है। उनके गीतों में अतीत को स्वस्थ परम्पराओं एवं उसके मूल्यों के प्रति सम्मान का भाव है व वर्तमान विभीषिकाओं एवं विद्रूपताओं के प्रति तीव्र विरोध, आक्रोश की भावना परिलक्षित होती है। आप हिन्दी कविता का गौरवपूर्ण उपलब्धि के रूप में स्वीकार किये जायेगें–इसमें कोई संदेह नहीं।

– समीक्षक : डॉ. अर्पणा बादल
बी. –158, रजत विहार, भोपाल (म.प्र.)
मो. 8989545299

■

आलेख

धर्म, कला और नारी

मधु तिवारी

भारतीय जन-जीवन सदा ही धर्मप्राण रहा है। फलत: भारत में धर्मिक स्मारकों, मंदिरों, चैत्यों एवं देवी-देवताओं की मूर्तियों की आवश्यकता प्रबल रही है। इसी के चलते भारतीय कला में आध्यात्मिकता का पुट रहा है। यही कारण है कि यहां के कलाकार धर्मवेत्ता और दार्शनिक पहले थे, और कलाकार बाद में। उनका प्रधान उद्देश्य सूक्ष्म धार्मिक भावनाओं को स्थूल रूप देना था। उन्होंने सुंदर कलाकृतियों का निर्माण आध्यात्मिक सत्य की अभिव्यक्ति के लिए ही किया। जिसमें देवी-देवताओं की महिमा का गान और उन्हीं को समर्पण भी था। इसी भाव-प्रबल्तता के कारण वे (कलाकार) अनाम भी रहे।

सर्जन और विसर्जन

सर्जन और विसर्जन माया शक्ति के कारण ही माना गया है। यह नारी रूपा है। अत: यह शक्ति मातृ-रूप में रूपायित मिलती है। सिंधु घाटी-सभ्यता

शिव पार्वती (लघुचित्र)

विष्णु लक्ष्मी (लघुचित्र)

काल से ही 'मातृ देवी' रूप की प्रतिस्थापना के प्रमाण भी इतिहास में दर्शित हैं। हरिदत्त वेदालंकार जी के अनुसार - वात्सल्य और करूण भाव से ओत-प्रोत इन नारी मूर्तियों के प्रति आदर और भक्ति रखना मूर्तिकार और भक्त के लिए स्वाभाविक हो जाता है। पर माया तो जीवन के रस और आनंद की जननी है, अत: भारतीय बला में नारी मूर्ति को अत्यन्त कोमल और आनंद विभोर दिखाया गया है। भारतीय कला में इस भाव को शालभंजिका, यक्षिणी, उमा, लक्ष्मी और प्रज्ञापारमिता आदि के रूपों में व्यक्त किया गया है। ये नारी प्रतिमायें माया की सर्जन-विसर्जन शक्ति की प्रतीक हैं।

कमल

इस प्रसंग को आगे बढ़ाने से पूर्व यहां कमल के संदर्भ का उल्लेख करना अन्यथा न होगा। कमल मात्र एक पुष्प ही नहीं भारतीय कला का एक प्रमुख प्रतीक माना गया है। इसे पृथ्वी का प्रतिरूप भी स्वीकारा गया है। यही कारण है कि सृष्टिकर्ता भगवान विष्णु के हाथों में प्राय: कमल को दर्शाया जाता है क्योंकि इस संसार की उत्पत्ति पृथ्वी से ही हुई है। कमल मातृ देवी के रूप का भी सूचक है। अत: कमल की स्वरूपभूता लक्ष्मी समलासीन चित्रित की जाती हैं। विष्णु की नाभि से उत्पन्न ब्रहमा भी कमल पर विराजमान हैं, उन्हें कमलयोनि भी कहा गया है। वहीं लक्ष्मी को पद्मसंभवाए पदमाक्षि पद्मारूहा

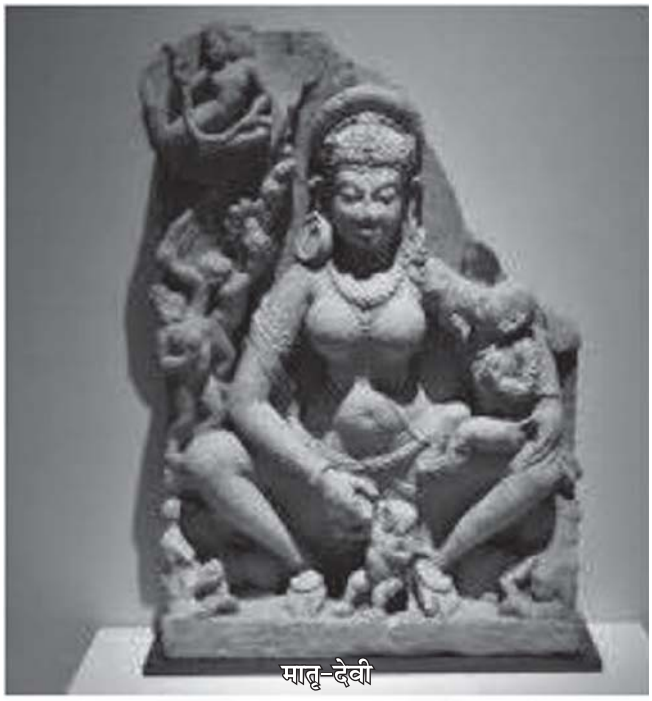
मातृ-देवी

त्रिमूर्ति

आदि नामों से सम्बोधित किया गया है।

नारी-पुरूष तत्व

वस्तुत: देवों के जीवन में देवियों का महत्वपूर्ण समभाग है। फलत: भारतीय कला में देव और देवियों का समान रूप से अंकन किया गया है। विद्वानों ने नारी के लावण्य को कला का ललाम भाव बताया है। नारी मनुष्य का अर्धगिनी मानी जाती है। इसी मान्य भावना ने आदिकाल् में शक्ति का रूप ले लिया था, जो लक्ष्मी और दुर्गा के नाम से प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि प्रजापतियों की रचना के पश्चात ब्रह्मा जी ने नारी तत्व के बगैर सृष्टि-रचना में अपने को असमर्थ पाया था। यही नारी और पुरूष तत्व देवी तथा देवता के रूप में प्रकट हुए। परंतु जिस प्रकार नारी तत्व के बगैर सृष्टि आगे नहीं बढ़ सकती है उसी प्रकार देवी अथवा आदिशक्ति के बिना ब्रह्मा भी कुछ प्राप्त करने में असमर्थ थे। यही कारण है कि शाक्त सम्प्रदाय के अतिरिक्त वैष्णव: और शैव सम्प्रदायी भी शक्ति की पूजा करते हैं।

शालभंजिका

त्रिमूर्ति

त्रिमूर्ति अर्थात ब्रह्मा विष्णु महेश में ही समस्त देवों की सत्ता स्वीकार की गयी है। जिन्हें सत्यम् शिवम् सुंदरम् का स्वरूप भी माना गया है। इनके साथ तीन देवियों अर्थात सरस्वती, लक्ष्मी तथा पार्वती अथवा दुर्गा के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। हालांकि देवों के साथ देवियों के उल्लिखित अस्तित्व को अनेक ग्रंथों में स्पष्ट किया गया है परंतु वैष्णव पुराण के अनुसार – अप्रत्यक्ष रूप से आदि देव विष्णु की ही शक्ति विष्णु के अनेक रूपों एवं अवतारों में विभिन्न रूप धारण करके उनके साथ रहती हैं अर्थात् यदि वे ब्रह्मा का रूप धारण करते हैं तो शक्ति सरस्वती के रूप में विष्णु के रूप में लक्ष्मी बनकर और शिव रूप में पार्वती बनकर साथ देती हैं। इस संदर्भ में अनेक मतभेद भी है जिनकी चर्चा एक लम्बा प्रसंग है।

चामरी यक्षिणी

सहायक ग्रंथ सूची -

1. **सम्मेलन पत्रिका** - कला अंक सम्पादक - राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।
2. **सौंदर्य का तात्पर्य** - डॉ. रामकीर्ति शुक्ल उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी लखनऊ।
3. धर्म, कला और नारी से संकलित चित्र (गूगल के सौजन्य से)

- कानपुर विश्वविद्यालय से ललित कला में परास्नातक
स्वतंत्र चित्रकार एवं लेखिका/ लखनऊ में निवास, मो. : 945766900

■

आलेख

जनजातीय गीतों में वृक्ष

डॉ. महेशचन्द्र शांडिल्य

आदिकाल से ही मानव के लिए वृक्षों का महत्व सर्व विदित है। हमारे ऋषि-मुनियों ने वृक्षों को कितना महत्व दिया, यह हमारे शास्त्रों से ज्ञात होता है। मनु स्मृति और मत्स्य पुराण में वृक्ष काटने वालों को दण्ड का प्रावधान हैं। इस्लाम धर्म में भी वृक्ष पर ही जोर दिया गया, जिससे पर्यावरण सन्तुलन बना रहे।

कहने का आशय यह कि हमारी सभ्यता और संस्कृति का विकास वनों में ही हुआ। द्वापर, त्रेता से लगाकर कलि-काल तक वृक्षों की उपयोगिता और उनके महत्व का उल्लेख कई ग्रंथों में है। तपस्वी, ऋषि मुनियों की तपस्या स्थली वन ही रहे है। वानप्रस्थ और सन्या स जीवन, वन से जुड़ा रहा है। भगवान बुद्ध को भी पीपल वृक्ष के नीचे ज्ञान मिला। महावीर तीर्थंकर ने भी वन-पहाड़ों में तपस्या की और ज्ञान प्राप्त किया। पहले शिक्षा-स्थल वन भूमि ही थी, जहाँ राजकुल के कुमार शिक्षा ग्रहण करने ऋषि-मुनियों के पास जाते थे। ऐसी प्राचीन व्यवस्था अब भी वन की महत्ता पर प्रकाश डालती है।

मत्स्य-पुराण के अध्याय 59 में वृक्षारोपण की विभिन्न विवियों का वर्णन है जो 'वृक्षोत्सव' कहलाती थी और एक पौधा रोपने को भी देवताओं का कृपाभाजन बताया गया है।

महात्मा बुद्ध ने कहा है - बन अनोखा ही तत्व है, इसमें असीम कृपा और कल्याण भाव समाहित है, ये अपनी सेवा का कोई प्रतिफल नही मांगते और अपना सर्वस्व उदारतापूर्वक समर्पित कर देते हैं। वृक्ष सभी को आश्रय देते हैं, छाया प्रदान करते हैं, उन लकड़हारों को भी, जो इनकी जड़ पर कुठाराघात करते हैं।

आशय यह कि प्रकृति ही मनुष्य के अनेक अभावों की पूरक है। मनुष्य के बिना प्रकृति बनी रह सकती है, किन्तु प्रकृति विहीन मनुष्य का जीना असंभव है। इसीलिए ऋषि-मुनियों ने वृक्ष के नीचे उसकी छांव में तपस्या की और रहने के लिए अपनी कुटिया बनायी। सम्राट अशोक ने वृक्ष लगवाकर वनों और वृक्षों को महत्व दिया। आम्रपाली ने गौतम बुद्ध को आम का बगीचा भेंटकर पेड़ पौधों का गौरव बढ़ाया।

जनजातीय समाज ने भी वनों को महत्व दिया, इसलिए वे वनों के बीच छोटे-छोटे गांव बसाकर रहते हैं। विश्व के सभी आदिम समूहों का पेड़, पौधों और वनों से गहरा संबंध रहा है। आज भी कई जनजातियाँ आदिम और प्राकृतिक जीवन जीने में विश्वास करती है। पेड़-पौधों ओर जंगलों का आदिवासी जनजीवन में महत्वपूर्ण और सदैव जीवन्त संबंध रहा है, इसलिए पेड़-पौधों और वनों का जिक्र आदिम समूह के परम्परागत गीतों में मिलना स्वाभाविक है। गीत, आदिकाल से मानव हृदय की सरल एवं निश्छल अभिव्यक्ति का माध्यम रहा है। उसने हमारे को गुदगुदाया है। इन गीतों की रचना किसने की, लेखक कौन है ? यह अज्ञात है, लेकिन आज भी वाचिक परम्परा में सुरक्षित है।

प्रकृति के अनादि सहचर हैं। प्रकृति ही उनका पालना है, वही उनके निर्माण का जनक चित्त, स्वस्थ मन सबका मन मोह लेता है। आदिवासी प्रकृति के अखण्ड कोमलता, भावों की सुन्दरता बरबस हमारा मन मोह लेती है।

चित्र : कलाबाई श्याम

हमारी बन-सम्पदा की रक्षा और पर्यावरण संतुलन बनाये रखने के लिए पेड़-पौधे लगाना कितना आवश्यक है, यही भाव एक कोरकू जनजाति के गीत में कुछ इस प्रकार मुखरित हुए है।

ए डाई इंगान हाज्जे जा, इंगान हाज्जे जा।
आले हिलमिलाटेन सब्बो डाई, इंगान हाज्जे जा।

आले हिलमिलाटेन मू-सिपना सिपना सिंज रोपे जा।
आले हिलमिटलाटेन आम्बे-जाम्बू सिंज रोपे जा।
इनी सिजेन खाडूबा डाई, अवल घामा घायेबा।
अवल घामा घाये जा डाई, आले फसल बीलीवा।
इनी सिंजेन गहरा सई, कोरो कोरो सुबाम्बा।
आम्बे-जाम्बू सिंजेन डाई, सिंबिल-सिंबिल जो उमूनवा।

है भाई आओ। हम सब मिलकर महुआ, सागौन, आम, इमली वृक्षों का पौधा लगायें। जब ये पौधे बड़े होंगे अर्थात् वृक्ष बन जायेंगे तब वर्षा अच्छी होगी और हमारी फसल भी अच्छी होगी । वृक्षों की शीतल छाया में लोग विश्राम करेंगे और मीठे-मीठे फल भी खायेंगे।

कोरकू जनजाति के पूर्वजों का निवास पेड़-पौधों में होता है। इस गीत में पेड़-पौधों को न काटने की कठोर हिदायत भी दी गयी है। गीत के माध्यम से पेड़-पौधों के प्रति आदिवासियों का असीम प्रेम और अगाध श्रद्धा का भाव प्रकट है।

डॉगर सिंजेन बाग कखब्बा डाई
सिंजेन सिंजेन आले गोमेज,
सिंजेन बाग कखब्बा रे।
सिंजने कखब्बा डो अफ्टो हेयेन,
सिंजेन बाग कखब्बा रे।
सिंजेन कखब्बा डो, गोमज आरागेज,
सिंजेन बाग कखब्बा रे।

है भाईयों । पहाड़ के वृक्षों को मत काटो। वृक्षों में हमारे पितरों का निवास है। वृक्षों को काटने से हमारे पितरों नाराज हो जायेंगे।

उनके नाराज होने से हम लोग भी प्रसन्न नही रह सकते अर्थात् भुखमरी, महामारी जैसी बीमारियों के प्रकोप से हम काल के ग्रास बन जायेंगे। हे भाईयों वृक्ष काटकर अपने पितरों को नाराज मत करो।

कितनी सुन्दर बात है। लगता है आदिमकाल से ही हमारे पितर हमारी वन के -सम्पदा को सुरक्षित रखने के लिए बहुत सजग थे। तभी तो वृक्षों में पितरों का निवास बतलाकर यानी पेड़ हमारे पितर है को अपने जीवन संस्कारों से जोड़कर न जाने कितनी ही वृक्ष को काटने से बचा लिया। यह भाव कोरकू जनजाति के उक्त गीत में स्पष्ट है, यह कम आश्यर्च की बात नही। यह हमारे लिए भी प्रेरणास्पद एक संदेश है।

कोरकू जनजाति ने वृक्षों में अपने पितरों का वास माना है इसलिए सभी प्रमुख पर्व-त्यौहारों पर उन भी करते 24 उनसे समय-समय पर उपकृत होने के कारण पूजन के माध्यम से अपनी सच्ची है। कोरकू, होली बड़ी धूमधाम से मनाते है। होली पर्व पर गाया जाने वाला एक वृक्ष- पूजन गीत दृष्टव्य है-

हुड़ी तिवार हेयेन डो डाई, हुड़ी तिवार हेयेन रे।
हिलमिलाटेन सब्बो डाई, परसा सिंज नी पूजो रे।
हिलमिलाटेन सब्बो डाई, चिचा सिंज नी पूजो रे।
हिलमिलाटेन सब्बो डाई, फिफरी सिंज नी पूजो रे।
सगड़ा सिंजेन आले गोमेज, सब्बोई सिंज नी पूजो रे।

हे भाई होली त्यौहार आ गया है। सभी हिल-मिलकर पलास, इमली, पीपल वृक्ष का पूजन करो। वृक्षों में हमारे देवताओं (पितरों) का निवास है। है भाई, इस धरती पर जितने भी वृक्ष है, वे हमारे देवता है। हिल-मिलकर उनका पूजन करो। उनके पूजन से हमारे घर में सदा खुशहाली रहेगी।

कोरकू जनजाति के एक विवाह बिदा-गीत में भी वृक्षों का महत्व वर्णित है। चूकि वृक्षों में पितरों, देवताओं का निवास है इसलिए घर की भीत (दीवार) में इनका अंकन शुभ व मांगलिक माना जाता है, इसीलिए इस गीत में माता-पिता अपनी पुत्री से कहते हैं-

चित्र : कलाबाई श्याम

हे कोनजई, हे कोनजई, आमा ब्याव डायेबा रे।
आमा कुंजकार उरा चलकेन, आमा कनकार उरा चलकेन डो।
आपेन माया-आबा-लियेन, टोने निशानी आरागेज डो।
है कोनजई , हे कोनजई।
आमा माय-आबा उरा दारोमेन,
गुदनी आम्बे-चिंचा नी हुण्डारेन डो।
आमा माय नी आमा आबा, डी गुदनी डोडोबा जा।
डी गुदनी डोडोबा मखान, जीव उरा राबांग जा।

हे बेटी, तुम्हारा विवाह हो गया है। तुम अपना घर छोड़ अपने सास-

ससुर के यहां जा रही हो। है बेटी, तुम अपने माता-पिता के लिए कुछ निशानी (स्मृति चिन्ह) छोड़ जाओ। है बेटी, तुम मझघर (बीच का घर) में हल्दी-कुमकुम से आम-इमली के चिन्ह बना जाओ।

जब तुम्हारी याद आयेगी तो तुम्हारे माता-पिता आम-इमली के चित्र को देख लिया करेंगे, जिससे उनका मन ठण्डा रहेगा। बिदा के बोझिल क्षणों का सरलता और सहजता से किया गया इतना सुन्दर और मार्मिक चित्रण शायद ही अन्यत्र देखने को मिले।

एक अन्य कोरकू गीत में नीम वृक्ष की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है-

हे बाई, हे बाई ।
टेंज गुड़ी पड़वां डो, टेंज गुड़ी पड़वां डो।
आले हिलमिलाटेन, लीमों सिंजेन पूजा डाये बो।
है बाई, हे बाई, लीमो सिंजेन पूजा डाये बो।
डी आले कोम्बोर रोगोय, नीड़े नी गोमेज बाबा डो।
लीमो पाला जोयेन कि कोम्बोर रोगोय,
मेरान बाग हाज्जे डो, मेरान बाग हाज्जे डो।
इनी तिवार नी आले लीमो सिंजेन पूजा डाये बो।

हे बहिन। आज गुड़ी-पड़वा है। आओ, हम सब मिलकर नीम वृक्ष का पूजन करने चले। वे हमारे शारीरिक रोगों को दूर करने वाले देवता हैं। हे बहिन। नीम पत्ती खाने से सभी प्रकार के रोग दूर भाग जाते है और वर्ष भर कोई बीमारी भी नहीं आती।

आओ बहिन पावन पर्व पर हम नीम देवता का पूजन करें। इस कोरकू गीत में बांझ स्त्री को पुत्रवती होने के लिए पीपल वृक्ष के पुजन की सलाह दी गयी है।

हे बंझोटी, हे बंझोटी,
आम फिफरी सिंज पूजे डो, पूजे डो।
फिफरी सिंजेन पूजेन डो टो, सगड़ा टाका डायेबा।
फिफरी सिंज आले कुड़ी गोमेज, आमा कोनकू उमूनवा।

हे बांझ बाई, तुम पीपल वृक्ष का पूजन करो। पीपल पूजा करने से सभी मनोकामनाएं पूर्ण होती है। क्योंकि, पीपल वृक्ष में हमारे कुल देवता का निवास है। हे बाई, तुम श्रद्धापूर्वक पीपल का पूजन करो, निश्चित ही तुम्हें शिशु जन्मेगा।

भारिया जनजाति मध्यप्रदेश के छिंदवाड़ा जिले के पातालकोट क्षेत्र में निवास करती है। भारिया जनजाति के सुआ गीत प्राकृतिक संपदा के मनोहारी दृश्य, वन-सम्पदा की महत्ता के लिए लोकप्रिय है।

तर ना री नाना री नारा री सुआ,
तर ना री नाना री, नाना री सुआ हो,
तर ना री नाना री ना।
हमरे आंगन में लिमुआ को बिरछा, ना रे सुआ हो।
छोड़ चले परदेश, ना रे सुआ हो, छोड़ चले परदेश, तर ना री।
हमरे आंगन में संतरा को बिरछा, ना रे सुआ हो।
छोड़ चले परदेश ना रे सुआ हो, छोड़ चले परदेश तर ना री।
हमरे आंगन में केला को बिरछा, ना रे सुआ हो।
छोड़ चले परदेश ना रे सुआ हो, छोड़ चले परदेश तर ना री।
हमरे आंगन में बीहि को बिरछा, ना रे सुआ हो।
छोड़ चले परदेश नारे सुआ हो, छोड़ चले परदेश तर ना री।

अर्थात् हे सुआ, हमारे आगन में नीम का छायादार वृक्ष है। फलदार संतरा, स्वादिष्ट केला और मीठे अमरूद के वृक्ष लगे हैं। यह सब छोड़कर प्रियतम परदेश जा रहे हैं। कैसे निष्ठुर प्रियतम हैं, जो हमारी मन की बात नहीं समझते।

भारिया जनजाति के एक जस गीत में नीम और अनार वृक्ष के पौधे रोपने की बात कही गयी है-

अरे मैया के भवन लहराय, बिरछा लीम के हो मैया।
कहां लगाऊं मैया लिमवा के बिरछा, कहां लगाऊं रे अनार।
द्वारे लगाऊं मैया लिमवा के बिरछा, आंगन लगाऊं रे अनार।
काहेन छिचूं लिमुवा को बिरछा, काहेन छिचूं रे अनार।
दूधन छिचूं मैया लिमुवा को बिरछा, दहियन छिचूं रे अनार।

देवी माई के मंदिर के आंगन में नीम के वृक्ष लहरा रहे हैं। हे मां नीम अनार वृक्ष कहां लगाऊं। हे मां, तुम्हारे आंगन में नीम और अनार के वृक्ष लगाऊंगा। नीम और अनार वृक्ष को काहे से सीचूंगा? हे मां, नीम को दूध से और अनार को दही से सीचूंगा।

ऐसे कई गीत आज भी हमारी जनजातियों की वाचिक परम्परा में कंठ-कंठ में सुरक्षित है। उक्त गीतों के भाव से यह स्पष्ट है कि पर्यावरण संतुलन बनाये रखने और पेड़ पौधों के प्रति श्रद्धा की भावना, हमारी भारतीय आदिम संस्कृति की देन रही है।

आदिवासियों का प्रकृति से सीधा तादात्म्य होने के कारण भारतीय जनजातियों की गोत्र-व्यवस्था भी प्राकृतिक उपादानों पर ही आधारित है। कई जनजातियों के गौत्र पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु तथा कई भौतिक वस्तुओं के नाम पर हे।

प्रामाणिक और तथ्यपूर्ण जानकारी के लिए यहां कोरकू, भील और बैगा जनजाति के कुछ गौत्र उल्लेखनीय है। कोरकू गोत्रों में अटखेर (खैर वृक्ष), कोलबा (कहू वृक्ष), खाम्बी (कुम्हई वृक्ष), जाम्बू (जामुन वृक्ष), धर्मा (धावड़ा वृक्ष), बेठे (भिलावा वृक्ष), लोबो (गूलर वृक्ष), साकोम (सागौन वृक्ष), सीलू (गोन्दी वृक्ष) आदि। भील गौत्रों में अमलिया (इमली वृक्ष), अवलिया (आवला वृक्ष), अजरावनिया (अंजन वृक्ष), चंगाड़िया (अचार वृक्ष), जमनिया (जामुन वृक्ष), बांस केला (बांस), रोहिनी (रोहन वृक्ष), सेमलिया (सेमल वृक्ष)आदि। बैगा गोत्रों में सरड़िया (साल-सरई वृक्ष), उदरिया (उदार वृक्ष), बरगिया (बरगा वृक्ष) आदि।

इस प्रकार हम देखते है कि हमारे आदिम पूर्वजों ने प्राकृतिक उपादानों की सुरक्षा, उनके प्रति श्रद्धा व सम्मान की भावना सदैव हमारे मन में रहे, इसीलिए उन्होंने जातीय नियम, सामाजिक-धार्मिक परम्परा एवं जीवन के संस्कारों में, जन भावना का आदर करते हुए, नियम-उपनियम बनाकर हमारी वन-सम्पदा की रक्षा के लिए अपना अमूल्य योगदान दिया।

-3, आई सेक्टर, राजबवेद कॉलोनी,
नयापुरा, कोलार रोड, भोपाल-462 042

■

शोध पत्र

राजस्थान प्रदेश की कलामय 'कल्याण सुन्दर'' प्रतिमाएं

धर्मजीत कौर

शिव-पार्वती विवाह या पार्वती परिणय का वर्णन अनेक धार्मिक ग्रन्थों में किया गया है यथा शिव पुराण, स्कन्द पुराण, महाभाष्य, गार्गी संहिता, कुमार सम्भव आदि। शिव पुराण, स्कन्द पुराण में शिव-पार्वती विवाह का कथानक दिया गया है। कवि कालिदास ने अपने ग्रन्थ कुमार सम्भव में इस कथानक को विस्तारित कर शिव-पार्वती विवाह व कुमार कार्तिकेय के जन्म को जन समान्य में लोकप्रिय बनाया। संभवत: इसलिए कल्याण-सुन्दर प्रतिमाओं के कला निर्माण का प्रारम्भ उत्तर गुप्तकाल व पूर्व मध्यकाल से माना जाता है। राजस्थान के सूत्रधारों व शिल्पियों में भी यह कथानक काफी प्रचलित था, इसलिए राजस्थान के सभी भागों से कल्याण-सुन्दर प्रतिमाएं प्राप्त होती हैं जिसमें कतिपय प्रतिमाओं में भगवान शिव देवी पार्वती के वाम भाग में प्रदर्शित हैं, जो शिव-पार्वती विवाह के प्रारम्भिक क्षणों का द्योतक है। सप्तपदी की परम्परा के अनुसार, विवाह संस्कार के प्रारम्भ में वधु, वर के दक्षिण पार्श्व में होती है। विवाह से सम्बन्धित सभी अनुष्ठानों की समाप्ति के बाद दुल्हन, दुल्हे के वाम पार्श्व में हो जाती है इसलिए पत्नी को वामांगी भी कहा जाता है। भारतीय कला परमार में ये मूर्त अंकन अपने वैशिष्ठय से खासा महत्व रखते है, जो कला के समय को जीवन्त रखे हुए है।

उदयपुर के कल्याणपुर में स्थित मन्दिर में एक कल्याण सुन्दर प्रतिमा लगी है। यह प्रतिमा सातवीं शताब्दी की मूर्ति कला का उदाहरण है तथा शिव-पार्वती विवाह का वास्तविक रूपायंन है।

कल्याण-सुन्दर कथानक की एक प्रतिमा बाणगंगा व गंभीरी नदियों के संगम पर स्थित संगेश्वर देवालय की जंघा में जड़ी हुई है, हालांकि प्रतिमा पर पर्याप्त मात्रा में चूना लगा हुआ है परन्तु त्रिशूलधारी चतुर्हस्त शिव देवी उमा का दक्षिण हस्त थामे हुये है तथा द्विहस्त, दर्पण धारिणी देवी, आदिदेव शिव के वामांग में विराजमान है व प्रतिमा के निम्न मध्य भाग में ब्रह्मा मंत्रोचारण कर रहे हैं, और ऊर्ध्व भाग में भगवान विष्णुचक्र व कलश थामे हुये हैं। चितौड़गढ से 90 किमी. दूर स्थित जोगनिया माता मन्दिर में कल्याण सुन्दर रूप का एक फलक लगा हुआ है जिसमें चतुर्भुज शिव, दक्षिण हस्त से पार्वती का पाणिग्रहण कर रहे हैं तथा निम्न भाग में ब्रह्मा जी विवाह-वेदी के साथ दिखाई दे रहे हैं,समभवत: यह फलक विवाह के प्रारम्भिक क्षणों का साक्षी है,क्योंकि देवी पार्वती भगवान शिव के दक्षिण भाग में है। उक्त दोनों प्रतिमांकन 8वीं शती ई. के हैं।

कामां से प्राप्त एक मूर्ति राजकीय संग्रहालय भरतपुर में संग्रहीत है, जो सप्तपदी के प्रारम्भिक क्षणों का प्रतीक है, यद्यपि मूर्ति पर्याप्त रूप से खण्डित है, परन्तु शिव का द्विहस्त होना स्पष्ट दिखाई दे रहा है और दक्षिण हाथ से वे देवी

भंवाल माता मन्दिर का शिव-पार्वती विवाह फलक

पार्वती का पाणिग्रहण कर रहे हैं तथा वाम हस्त ऊरू पर रखा हुआ है। मध्य निम्न भाग में चतुर्भुज ब्रह्मा, एक स्त्री आकृति के साथ विराजमान है, जो वामन पुराण के कथानक के अनुसार पार्वती की सखी मालिनी हो सकती हैं तथा फलक के दक्षिण मध्य भाग में दर्पण धारिणी व वाम मध्य भाग में पुरुषाकृति का अंकन किया गया है और यह शिव-पार्वती विवाह फलक, मृदंग वादक का निम्न भाग में प्रदर्शन के कारण अनोखा प्रतीत होता है। आवां के मंदिर समूह में भी एक देवालय के वेदीबंध पर एक कल्याण सुन्दर फलक लगा हुआ है जिसमें विवाह के प्रारंभिक क्षणों का प्रदर्शन किया गया है और भगवान शिव के दक्षिण भाग में पार्वती का अंकन किया गया है तथा निम्न-मध्य भाग में ब्रह्मा जी विवाह सम्पन्न करवा रहे हैं।

राजकीय संग्रहालय, अजमेर में भी एक कल्याण सुन्दर फलक है, जो कामां भरतपुर से प्राप्त है। यह कला फलक विवाह विधि प्रारम्भ होने का सूचक है। इसमें चतुर्भुज शिव बांयी तरफ तथा द्विहस्त देवी पार्वती दांयी तरफ हैं और मध्य में चतुर्भुज व चतुर्हस्त ब्रह्मा, विवाह हवन सम्पन्न कर रहे हैं व यज्ञवेदी से प्रज्ज्वलित हो रही अग्नि शिखाएं बारीकी से अंकित की गई हैं तथा दक्षिण की तरफ फलक में दृष्टव्य चक्रधारी विष्णु दोनों हाथों में कलश धारण किये हुये हैं। सतवास के सूर्य मन्दिर प्रांगण में स्थापित लघु देवालय कला स्थापत्य शैली के अनुसार 8वीं शताब्दी ई. की कलाकृतियां है। इनमें से एक आयताकार देवालय के भद्र भाग पर पार्वती-परिणय की मूर्ति स्थित है। यह मूर्ति भी विवाह के प्रारम्भिक क्षणों की द्योतक है, जिसमें पार्वती दक्षिण भाग में व शिव वाम भाग में है तथा निम्न-मध्य भाग में यज्ञ पुरोहित के रूप में ब्रह्मा जी विवाह सम्पन्न करवा रहे है। उक्त फलक की रचिका के उद्गम भाग के शीर्ष पर अग्निदेव, भगवान विष्णु, पितामह ब्रह्मा व राहु का अंकन किया गया है तथा कल्याण सुन्दर फलक की पार्श्ववर्ती रथिकाओं में शैवपरिचारक व परिचारिकाओं का अंकन है।

भंवाल माता मन्दिर के सभा मण्डप के सामने की वाम पार्श्ववर्ती भित्ति के बाहरी भाग के स्तंभ युक्त ताक में शिव-पार्वती विवाह का प्रदर्शन

किया गया है। इस कल्याण सुन्दर कला फलक में चतुर्बाहु शिव, ऊर्ध्व हस्तों में त्रिशूल व नागेन्द्र धारण किये हुये है व दक्षिण निम्न हस्त से पार्वती का दक्षिण हस्त धारण कर पाणिग्रहण कर रहे हैं तथा वाम निम्न हस्त देवी के स्कन्ध पर स्थित है। निम्न भाग में परमपिता ब्रह्माजी मंत्रोचारण कर रहे हैं और पार्श्ववर्ती भागों में मंगलघट की स्थापना की गई है।

निमाज में मकर मंडी माता मन्दिर परिसर से भी एक कल्याण सुन्दर प्रतिमा 9वीं शती ई. की कलाकृति प्राप्त होती है जिसमें देवी पार्वती दक्षिण भाग में अंकित है तथा चर्तुभुज शिव ने दक्षिण निम्न हाथ से पार्वती देवी का हस्त थाम रखा है व निम्न मध्य भाग में दम्पति के मध्य में ब्रह्माजी का अंकन किया गया है और भगवान शिव के पैरों के पास एक आकृति अंकित है, परन्तु भग्न होने के कारण स्पष्ट नहीं है।

कुंभ श्याम मन्दिर चितौड़गढ में कल्याण सुन्दर के दो कला फलक लगे हुये हैं। पहली प्रतिमा मन्दिर के प्रदक्षिणा पथ की बाहरी भित्ति के वेदीबन्ध भाग की रथिका में कल्याण सुन्दर फलक स्वरूप में है। जिसमें देवी पार्वती भगवान शिव के दांयी तरफ स्थानक मुद्रा में अंकित है और निम्न मध्य भाग में चतुर्मुख व चतुर्भुज ब्रह्मा यज्ञ कुण्ड के सम्मुख विराजमान है। देवी उमा के हाथों में दर्पण का प्रदर्शन किया गया है तथा भगवान शिव के हाथों में त्रिशूल व नागेन्द्र का अंकन है।

द्वितीय प्रतिमा मन्दिर के सभा मण्डप के आन्तरिक भाग में लगी हुई है जिसमें निम्न पार्श्ववर्ती भागों में बांयी तरफगणेश व दांयी तरफविष्णु को प्रदर्शित किया गया है और यह फलक विवाह संस्कार पूर्ण होने का द्योतक है। भगवान शिव व देवी पार्वती के विवाह सम्बंधी अंकन में गणेश को उत्कीर्ण किया जाना पौराणिक विषयवस्तु की अज्ञानता का प्रतीक है।

सुदरासन नागौर से भी शिव पार्वती विवाह का एक उदाहरण मूर्ति कला में प्राप्त होता है। यह मूर्ति प्रयाप्त खण्डित है पर दक्षिण में चतुर्हस्त शिव, वाम निम्न हस्त से देवी उमा के हाथ को थामे हुये है। विवाह पुरोहित के रूप में ब्रह्माजी मध्य में विराजमान ना होकर देवी उमा के दक्षिण पाद के सामने उत्कीर्ण हैं, यद्यपि विवाह वेदी वर-वधु के मध्य ही दृष्टिगोचर हो रही है। इस मूर्ति के दक्षिण स्तम्भ के पास चक्रधारी भगवान विष्णु और वाम भाग में स्त्री आकृति का प्रदर्शन किया गया है।

ओसियां के हरिहर-2 मन्दिर की कर्ण देव कुलिका के गर्भ गृह की बाह्य भित्ति की भद्र रथिका में कल्याण सुन्दर प्रतिमा का अंकन किया गया है। चतुर्भुज भगवान शिव दोनों निम्न हस्तों से वाम दिशा में अंकित देवी उमा के

दधिमाता मन्दिर का कल्याण सुन्दर फलक

सुदरासन नागौर का शिव-पार्वती विवाह फलक

हाथों को पकड़े हुये है। दैविय आकृतियों के मध्य में चतुर्मुख व द्विहस्त ब्रह्मा का अंकन किया गया है तथा भगवान शिव के ऊर्ध्व हस्तों में त्रिशूल व नागेन्द्र दृष्टिगोचर हो रहे हैं। रथिका के पार्श्ववर्ती भाग में घट धारिणी गंगा व यमुना का अंकन किया गया है।

राजकीय संग्रहालय उदयपुर में भी कल्याण सुन्दर प्रतिमाओं के दो उदाहरण प्राप्त होते हैं। उदयपुर संग्रहालय की पहली मूर्ति एक स्वतन्त्र प्रतिमा है जिसमें केवल एक ही शिव पार्वती का अंकन प्राप्त होता है, प्रतिमा निम्न भाग में खण्डित है। द्विहस्त देवी पार्वती का दक्षिण हस्त, चतुर्भुज शिव द्वारा पणिग्रहण के लिए थामा हुआ हैं। भगवान शिव का वाम हाथ ऊरू पर है तथा ऊर्ध्वंकर खण्डित है साथ ही देवी पार्वती का मुख खण्डित है। गंगोद्भव कुण्ड आहाड़ में कल्याण सुन्दर भाव के दो कला फलक प्राप्त होते हैं। पहली मूर्ति में शिव-पार्वती, वर-वधु के रूप में पाणिग्रहण संस्कार के अनुसार एक-दूसरे का हाथ थामें हुये हैं तथा ब्रह्माजी यज्ञवेदी के समीप विराजमान, विवाह संस्कार सम्पन्न करवा रहे हैं। मूर्ति में घट मंगल की स्थापना प्रदर्शित कि गयी है। द्वितीय मूर्ति अपेक्षाकृत लघु आकार की है, परन्तु कल्याण रूप में शिव व सौन्दर्य की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति रूप में पार्वती के विवाह का यथार्थ कला प्रदर्शन किया गया है।

झालावाड़ संग्रहालय में भी 9वीं शताब्दी ई. की एक कल्याण सुन्दर प्रतिमा संग्रहित है, मूर्ति में शिव चतुर्भज के ऊर्ध्व हस्तों में त्रिशूल व नागेन्द्र धारण है तथा निम्न दक्षिण हस्त से उमा के हाथ को थाम रखा है। देवी उमा सामान्य आभूषणों से सज्जित है व उन्होंने निम्न हस्त में दर्पण धारण कर रखा है। निम्न भाग में ब्रह्माजी का अंकन खण्डित व्यवस्था में है। मूर्ति में भगवान शिव की ओर निम्न भाग में अंकित आकृति घिस जाने से पहचान योग्य नही है, लेकिन देवी उमा की तरफ घट धारिणी नारी आकृति अंकित है।

नागौर जिले के डीडवाना कस्बे में स्थित दधिमाता मन्दिर के सभा मण्डप के कर्ण भाग में निर्मित लघु देवालय में एक कल्याण सुन्दर फलक लगा हुआ है जिसमें दक्षिण भाग में चतुर्भुज शिव तथा वाम भाग में द्विहस्त पार्वती का प्रदर्शन किया गया है। कल्याण के प्रतीक भगवान महादेव शिव ने ऊर्ध्वहस्तों में त्रिशूल व नागेन्द्र धारण कर रखा है तथा दक्षिण निम्न हाथ से वे पार्वती का पाणिग्रहण कर रहे हैं। फलक के निम्न मध्यवर्ती भाग में भगवान ब्रह्माजी का विवाह वेदी में आहुति देते हुये चित्रण किया गया है तथा निम्न पार्श्ववर्ती भागों में परिचारक-परिचारिकाओं का प्रदर्शन है।

- शोधार्थी, अधीक्षक, पुरातत्व संग्रहालय विभाग, राजस्थान, जयपुर
म.नं. टी-85, नारायण विहार, श्रृंगारपुरा, मानसरोवर, जयपुर 302020 (राज.)
मोबा. 7597043952

■

बांग्ला कवि शंख घोष की कविताएँ

शंख घोष (5 फरवरी 1932 – 21 अप्रैल 2021) एक प्रमुख भारतीय बंगाली कवि और साहित्यिक आलोचक थे। वह एक प्रमुख रवीन्द्र विशेषज्ञ और एक शक्तिशाली लेखक थे। बंगला भाषा में लिखित 'दिनगुली- रातगुली', 'निहित पाताल छाया', 'मुर्ख बोड़ो, सामाजिक नोय, बाबरेर प्रार्थना आदि प्रमुख किताबें। पुरस्कार पद्म भूषण (2011), ज्ञानपीठ पुरस्कार (2018), साहित्य अकादमी पुरस्कार (1977)।

अनुवाद : रोहित प्रसाद पथिक

जन्म : 25 अक्तूबर, स्थान: आसनसोल, पश्चिम बंगाल। प्रकाशन: कई प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं जैसे: हंस, वागर्थ, किस्सा-20, राजस्थली, पाखी, कथादेश आदि में कविताएँ, कहानियाँ, पुस्तक समीक्षा का प्रकाशन। सम्पर्क: के. एस. रोड, रेल पार डीपू पाडा क्वार्टर नं. (741/सी), आसनसोल-713302(पश्चिम बंगाल) मोबाइल: 8101303434

बादल के जैसा मनुष्य

मेरे सामने से टहलते हुए जाता है
वह एक बादल के जैसा मनुष्य
उसके शरीर के भीतर प्रवेश करने पर
मालूम पड़ता है कि
सारा पानी धरती पर झड़ जाएगा।

मेरे सामने से टहलते हुए जाता है
वह एक बादल के जैसा मनुष्य
उसके सामने जाकर बैठने पर
मालूम पड़ता है कि
पेड़ की छाया आ जाएगी मेरे पास

वह देगा कि लेगा?
वह क्या आश्रय चाहता है?
ना कि आश्रय में है...?
मेरे सामने से टहलता हुआ जाता है
वह एक बादल के जैसा मनुष्य

रेखांकन : मार्टिन जॉन

उसके सामने जाकर खड़े होने पर
मैं भी संभवत: कभी किसी दिन
हो सकता हूँ बादल...?

तबाह

हे! भगवान,
तबाह हो जाने वाले रास्ते पर चला था
आप मेरे तबाह हो जाने का पूरा ऋणी हो
जो कटोरे में भर कर रखा था

लेकिन
आप की विस्तृत मुट्ठी को पकड़कर
मैंने हृदय की आपा-धापी के मध्य
शाम के समय
आप एकदम से बिखर जाते हैं...बिखर जाते हैं
जैसे शब्दों से तबाह कर देते हो
मेरे भगवान...!

यौवन

दिन रात के मध्य
पक्षियों के उड़ने की छाया
बीच-बीच में याद आता है
हमारा अंतिम मिलना-जुलना।

मेरी लड़कियाँ

लिख रहा हूँ
जल के अक्षरों से 'मेरी लड़कियां'
हर घर में
आज भी भीख मांगने के हाथों में पड़ी हुई हैं।

बातों के भीतर बातें

सभी नहीं, फिर भी
बहुत कोई बातों के भीतर बातें खोजते हैं
सहज भाषा तुम भूल गए हो
इस मूसलाधार बारिश में
आओं नहा लें।

पानी के भीतर कितने मुक्तिपथ है...?
कभी सोच कर देखों
अब बाधित होकर बैठे रहकर
बहुत ज्यादा देर बैठें रहकर...सिर्फ बैठें रहकर

हृदय बहुत कुंठित हो चुका है
मालूम पड़ता है
अब क्या...?

तुम्हारी कोई निजी गरिमामई भाषा नहीं...?
क्यों आज प्रत्येक समय इतना
अपने विरुद्ध बातें बोलते हों।

■

गीत

ममता वाजपेयी के गीत

ममता वाजपेयी

डी/1-139, दानिश नगर
होशंगाबाद रोड
भोपाल-462026 (म.प्र.)
मो. 9993584377

रेखांकन : मार्टिन जॉन

गीत वासंती लिखे मैंने

फूटती संवेदनाएँ साध कर,
गीत रसवंती लिखे मैंने

पर्वतों की गोद जब छोड़ी
अर्थ जाना तब किनारों का
पनघटों की प्यास पहचानी
अक्स ओढ़ा चाँद तारों का
बाँह फागुन की गुलाबी थाम कर
गीत वासंती लिखे मैंने

पृष्ठ पलटे कुछ पलाशों के
कुछ तहें कचनार की खोली
चिट्ठियाँ बाँची गुलाबों की
रातरानी साँस में घोली
अधखुली आँखें खुमारी आँज कर
गीत लजवंती लिखे मैंने

उँगलियों के नर्म पोरों में
अनगिनत संभावनाएँ थीं
पर हथेली की लकीरों में
नाचने की भूमिकाएँ थीं
बाँसुरी से तार दिल के बाँध कर
गीत बैजन्ती लिखे मैंने

विस्मयादिक बोध से रिश्ते
प्रश्नवाचक हो गया जीवन
पूर्ण वाचक चिन्ह से सपने
संधि के विच्छेद सी तड़पन
दर्द की सारी लकीरें लाँघ कर
गीत अरिहंती लिखे मैंने

बौराई बुलबुल-से हैं हम

एकाकीपन भाग्य हमारा
कौशल्या के कुल से हैं हम

धरे कोख में अवतारों को
गर्वित होते रहे स्वयं पर
अँकुराना था धर्म हमारा
पाले पोसे अपने अंकुर
ये जग है सर्जना हमारी
सीमित नहीं विपुल से हैं हम

अधरों पर चुप्पियाँ सजी हैं
मन में हाहाकार लिए हैं
जीवन के इस समरांगण में
मर कर सौ सौ बार जिए हैं
नैनों की कातर चितवन हैं
कोमल भाव मृदुल से हैं हम

जब-जब चटकी धूप समय की
वृक्षों में छाया समेट ली
फूलों ने इल्जाम लगाए
पत्तों ने मूछें उमेठ ली
तिनके लिए सोच में बैठे
बौराई बुलबुल-से हैं हम

जिनमें हमने प्राण भरे थे
वे तो अब ईश्वर कहलाते
चंदन वंदन रोली अक्षत
द्वार द्वार पर पूजे जाते
दीन सुदामा की गठरी में
मुट्ठी भर तंदुल से हैं हम

कविता

यामिनी 'नयन' गुप्ता की कविताएँ

यामिनी 'नयन' गुप्ता
जन्मस्थान : कोलकाता। काव्य संकलन : आज के हिंदी कवि (खण्ड1), प्रकाशनः दिल्ली पुस्तक सदन द्वारा, तेरे मेरे शब्द (साझा)। शब्दों का कारवां (साझा)- मेरे हिस्से की धूप (साझा), काव्य किरण (साझा), चाटुकार कलवा 2020, व्यंग्य संग्रह(साझा)
सम्पर्क : मनु मोटर्स, हम कांम्प्लेक्स सिविल लाइंस, रामपुर उ.प्र. 244901
मो. 9219698120

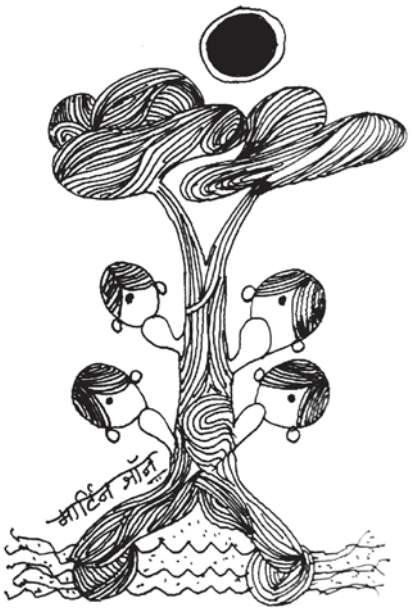

रेखांकन : मार्टिन जॉन

जीना -अपनी तरह

हांलांकि प्रेम के अलावा भी
स्त्रियों को होते हैं बहुत से काम
घर गृहस्थी, समाज की सवालिया निगाहों के दंश
काजल की कोठरी सा प्रेम
और बादलों से उजला चरित्र,
पर भीतर ही भीतर वो चाहती हैं प्रेम
कोई प्रेम से पूछ ले ... तुम ठीक तो हो ना !!
कभी अपने मन की भी कर लिया करो,
इतना भी क्या डरना समाज से
पर ऐसे शख्स होते हैं विरले ही
और स्त्री के हिस्से में उतने ही आते हैं
जितना परात में रखे जल में चांद।

ऐसे सुहृदयी प्रेमी पा भी जाती हैं कुछ स्त्रियां
क्या कहा ???
नैतिकता से परे है **विवाहिता** स्त्रियों के प्रेमी होना
जाइए जनाब!!
कौन से जमाने में जी रहे हैं आप
सुदूर बैठा कोई पुरुष गर पौंछ दे एक स्त्री के आंसू,
सोख ले उसका अवसाद .....
दूर कर दे अकेलेपन का गुबार ;
स्त्री के हर कृत्य को नैतिकता के खांचों में कसने का
पुराना हो चला है **रिवाज**
जीवन में खुद को **ख़पा** देने वाली स्त्रियां नहीं चाहतीं
सौंपना..... ये **विरासत** अपनी बेटियों को।

पग पग पर समझौतों की डगर
नई पीढ़ी के लिए नहीं बनी
आदर्शवादिता के खांचों में ढली
स्त्रियों की यह फौज अब आखरी खेप है
वह सीख रही है अब.....
जीना अपनी तरह
क्योंकि .....
दिल की हर बात बिना कहे समझने वाले
वो प्रेमी रहते हैं किसी सुदूर देश में
सफेद घोड़े पर सवार **राजकुमार** सरीखे यह प्रेमी
मिलते हैं कुछ स्त्रियों को....
एक **उम्र** गुजर जाने के बाद।

लाल लैटर बॉक्स

आधुनिकता के खोल में
आंगन बदला ड्राइंग रूम में,
बदल गए मकान के दरो-दीवार
बदल गई हवा भी शहरों की,
बदली रंगत गांवों की
सुख-दुख के संदेशे सहजता
लाल लैटर बॉक्स हो गया विलीन ।

लाल रंग का लैटर बॉक्स
जो मुस्तैद दिखता था
नगर के बाजारों में
गांवों में किसी पेड़ की आड़ में
झेलता धूप और बारिश का प्रहार
पर कभी नहीं ऊबा उसका रंग
जीवन की जंग अब गया वो हार।

लाल रंग का लैटर बॉक्स
डाकिए की साइकिल की घंटी
डाक लाया की धुन
या कि हर आहट पर...
संदेशा आ गया की
उम्मीद हुई कहीं गुम ।

प्रेम का इसरार
विरह की व्यथा,
महाजन के तकादे
बेटे के लौट के आने की राह तकतीं
दो जोड़ी बूढ़ी आंखें
जमाने भर की संवेदनाओं को बांचता
कभी कह ना पाया अपने ही मन की बात....

वो लाल लैटर बॉक्स ।

ग़ज़ल

किशन तिवारी की ग़ज़लें

किशन तिवारी

34-सेक्टर-9 ए
साकेत नगर,
भोपाल-462024 (म.प्र.)
मो. 09425604488

रेखांकन : मार्टिन जॉन

आईना अपना चुना

सामने छाया थी फिर भी धूप का रास्ता चुना
सब हक़ीकत में जिये मैंने मगर सपना चुना

जो दिखाई दे वही हर बार सच होता नहीं
इसलिए देखे बिना मैंने उसे अपना चुना

लोग बाजारों में दूकानें सजा बैठे रहे
जो बिकाऊ था नहीं सबने वही चेहरा चुना

चाँदनी रातें, महकता मोगरा, भाया मुझे
अपनी रातों के लिए सबने मगर क्या क्या चुना

कामयाबी की कोई मंज़िल नहीं संसार में
जो जिसे अच्छा लगा उस राह पर बढ़ना चुना

क्या बताएँ आपको खुद पर भरोसा ही नहीं
आपने आख़िर गलत राहों पे क्यूँ चलना चुना

सोचता हूँ अपने दिल की बात में किससे कहूँ
बात करने के लिए फिर आईना अपना चुना

ज़रा इनको हँसा दे

शीरी ज़बान आपकी, फिर बोल ये सादे
सच सच बताओ आपके अब क्या हैं इरादे

अब तेरे दिल में क्या है ज़रा इतना बता दे
तू अपनी बेरुखी से न ज़रकों को हवा दे

आँखों में बस सवाल लिए लोग खड़े हैं
कुछ ऐसी बात कर जो ज़रा इनको हँसा दे

चेहरे से तो ज़ाहिर है मगर कह न सकेंगे
प्यासा बहुत हूँ मैं ज़रा नज़रों से पिला दे

सैलाब उठ रहा है मेरे दिल में आज फिर
मैं डूब न जाऊँ कहीं तू हाथ बढ़ा दे

तू बेवफाई कर, मुझे मंजूर है लेकिन
बनकर के दोस्त इस तरह मुझको न दगा दे

आँखों से मेरे दिल में ग़ज़ल लिख रहे हो तुम
कहते हैं लोग अब 'किशन' ये सबको सुना दे

आलेख

निमाड़ का महालोकोत्सव गणगौर

डॉ. सुमन चौरे

नौ दिनऽ की गणगौर म्हारा साहेबाऽ
रमणऽ जासोऽ वाड़ी मऽ
खोलो भरी नऽ फुलड़ पाती लावसाऽ
रनु बाई का संगऽ रमसाऽ जीऽ
कुआ बावड़ी बाग़ऽ बगीचाऽ
नौ दिन झालरियाँ दीसाँ जीऽ

भावार्थ – नौ दिन गणगौर माता का पर्व है। हे स्वामी हम बाड़ी में पाती खेलने जायगे। हम रनु बाई के संग बाग़ बगीचा कुआ बावड़ी पर झालरियाँ देंगे और अपनी गोदी में हरी फूल पाती लेकर आएंगे।

यह गीत और ऐसे कई लोकगीत आपको निमाड़ के शहर-शहर, गाँव-गाँव, गली-गली से सुनाई देंगे। चैत्र मास की कृष्ण पक्ष की ग्यारस से लेकर चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की तृतीया तक। नौ दिन सम्पूर्ण निमाड़ इन लोकगीतों में सराबोर रहता है। 'गणगौर' निमाड़ का नौ दिवसीय शक्ति अराधना पर्व है। यह महालोकोत्सव पर्व है। यह शिव-गौरी का आराधना पर्व है, जहाँ इनको रनुबाई-धनियर राजा के रूप में सम्बोधित करते हैं। यहाँ की देवी राजमहल की देवी नहीं है। न मंदिर में विराजमान देवी है वह तो मात्र निमाड़ के आमजन की आम लोगों के साथ रहने वाली रमण करने वाली देवी है इसीलिये इसे लोकदेवी भी कहते हैं। यहाँ देवी के माँ-बहन, पत्नी-बेटी सभी रूप का वर्णन मिलता है।

गणगौर का शाब्दिक अर्थ है –

गण यानी लोक और गौर याने सखी सहेली। अर्थात् जो गण की गौर हो वही गणगौर। जिसे गीतों में रनुबाई और धनियर राजा गौरबाई-ईश्वर राजा, लछ्मीबाई-विष्णु राजा, सईतबाई-बिरमा राजा, रोहेणबाई- चंद्रमा राजा कहा जाता है।

गणगौर पर्व पर देवी का स्वरूप जवारे के रूप में रहता है। कुरकई (छोटी बाँस की टोकनी) में शुचिता के साथ माटी भरकर उसमें गेहूँ बोये जाते हैं। शास्त्रोक्त पद्धति से देवी का आवाहन मंत्रोच्चार कर किया जाता है; किन्तु निमाड़ में लोक देवी का आवाहन करने के लिए लोकगीत गाये जाते हैं। इस पूजन पद्धति में सहज सरल भाव से जवारे सिंचन कर ही देवी की आराधना पूरी होती है। भोला लोक-जीवन के सभी आयामों में देवी देवता को अपने जैसे ही समझता है। अत: यहाँ खेती में गेहूँ बोता है धणियर राजा (शिव) और कृषि कर्म में सहयोगी होती हैं उनकी पत्नी रनुबाई (पार्वती)। एक लोक-गीत के भाव हैं –

भोळा धणियर राजा घरऽ वाया जागऽ
रनुबाई सींचऽ लियाऽ
राणीऽ सींचीऽ नऽ जाण्या हो,
जवाराऽ पेळा पड़्या।

गणगौर मूलत: निमाड़ के कृषक समाज का शक्ति आराधना पर्व है। गणगौर के गीतों में विराट कृषि दर्शन है। पत्नी पति से अरज करती है कि उसे पीहर मोठा भाई के यहाँ जाना है। तदनुसार रनुबाई स्नान कर शृंगार करती है। तब धणियर पूछते हैं, ''हमें किस घर मेहमान बनकर चलना है?'' तब रनादेवी कहती हैं –

दूरऽ का मोठाजी भाई अरजऽ करऽ हो
उनऽ घरऽ नऽ जासाँ मेजवानऽ
उनऽ घरऽ अम्बा आमली हो
उनऽ घरऽ बाड़ी मँऽ दाखऽ
उनऽ घरऽ सूर्या केवड़ो हो
उनऽ घरऽ जासाँ मेजवानऽ –

भावार्थ: मेरे दूर के बड़े वाले भाई के घर मेहमान बनकर चलेंगे। उनके घर आम, इमली और जामुन के वृक्ष हैं, उनकी बाड़ी में अंगूर, अनार हैं। उनकी बाड़ी में सूर्या केवड़ा लगा है, जो वातावरण में सुवास फैलाता है।

गणगौर गीतों में स्वयं देवी यह जानती हैं कि उनका पीहर धरती पर है। धरती ही एक ऐसा स्थान है जहाँ अन्न उपजता है। स्वर्ग में तो अन्न की खेती दुर्लभ है। जब देवी की स्तुति के गीत गाये जाते हैं तो महिलाएँ बड़े तन्मय होकर गाती हैं: ''कि देवी उन्हें भी इस बात का गुमान होता है कि उसका भाई किसान है। हमारे पति देवी के भाई हैं।'' यह गीत भी बड़ा सारगर्भित है। देवी वन में झूले पर झूल रही है, और एक तपस्विनी भिक्षा की याचना करती है, तो रनुबाई एक सूप भरकर मोती देती हैं। इस पर तपस्विनी कहती हैं, ''माता हम तुम्हारे माणिक मोती लेकर क्या करेंगे। हम तो क्षुधा तृप्ति के लिए अनाज की याचना कर रहे हैं।'' तब रनुबाई कहती हैं, ''खेत न बोये, खलिहान न बोये। चैत्र का माह आने दो, तब अन्न की भिक्षा देंगे।'' देवी कहती हैं: हम धरती पर जायँगे। धरती पर हमारा पीहर है। वहीं खेती बाड़ी होती है। तब हमारे पिता-भाई हमें अनाज की सौगात देंगे, तो हम वह तुम्हें लाकर दे देंगे।

भर्या डोंगर मऽ झूला बँध्याऽ
म्हारी रनुबाई झुलवा जायजी
झुलतऽ जऽ झुलतऽ तापेसरी आई माता
हमखऽ भिक्षा देवो जीऽ –
थाळऽ भरी मोती राणी रनुबाई नऽ लिया
चल्याऽ चल्याऽ ते भिक्षा देंणाऽ जी।

काई कराँ हो थारा माणिक मोती
अन्न की भिक्षा देवो जीऽ।
खेतऽ नी वायो खळों नी वायो
काय की भिकक्षा देवाँ जीऽ
आवसे रेऽ चईतऽ को महिनों
जाँसा हमारा पीयर जीऽ
लाँवसा रेऽ गहुँड़ा की बाळदऽ
जवँऽ जाई भिकक्षा देवाँ जीऽ

भावार्थ: डोंगर में राणी रनुबाई झूला झूल रहीं थीं, तभी एक तपस्विनी भिक्षा की याचना करती हुई आई। रनुबाई सूप भर मोती देने लगीं, तो तपस्विनी बोली, ''माता! हमें तो पेट की आग बुझाने के लिए अन्न की भिक्षा चाहिए। माणिक्य मोती हमारी क्षुधा तुष्टि के काम के नहीं हैं।'' इस पर रनुबाई बोलीं, ''जब हम अपने पीहर धरती पर जायँगे, तब अन्न तुम्हारे लिए लायँगे।

निमाड़ में लोक चैत्र के दिनों में देवी को बेटी के रूप में बुलाते हैं। किसान की गेहूँ की फ़सल चैत्र मास में पक कर घर आ जाती है। गृह स्वामिनी कहती है, ''स्वामी!, अपने घर रनुबाई और धणियर राजा आयँगे, तो उनके बैठने के लिए श्रेष्ठ उत्तम आसन बनाना है। अपनी बाड़ी के चन्दन वृक्ष की डाल काटकर ले आओ –

बाड़ी मँऽ को चन्दनऽ कटाड़ो रेऽ
म्हारा मानऽ गुमानी डोलाऽ
जेखऽ सुतार्या घरऽ राळो रे
जेऽ परऽ रनुबाई बठाड़ो रेऽ
रनुबाई अकेला नी बठऽ रेऽ
जेऽ परऽ धणियर राजा बठाड़ो रेऽ
म्हाराऽ मानऽ गुमानी डोलाऽ।

भावार्थ: हे मेरे स्वामी! तुम अपनी बाड़ी में लगा चन्दन वृक्ष कटवा लो और सुतार से कहो कि वह उसका सुन्दर आसन बना दे। उसको कुम्कुम से सजा दो। उस पर रनुबाई को बैठायँगे। रनुबाई अकेली नहीं बैठेंगी, साथ में धणियर राजा को भी बैठायँगे। हमारी रनुबाई बेटी अपने स्वामी सहित नौ दिन के लिए आ रही हैं। आनन्द का पारावार नहीं होगा।

प्रस्तुत गणगौर गीत कृषक–महिला की अभिलषित वांछनाओं को दिग्दर्शित करता है। वह देवी–देवताओं की आराधना करती हुई माँगती है अपने सुखी–सुसमृद्ध जीवन की भिक्षा और कृषिकर्म में सहयोगी गोधन की ठानऽ। एक गीत देखिए –

पूजणऽ वाळई काई माँगऽ
दूधऽ पूतऽ आह्वात माँगऽ
टोंगळ्या उडंतो गोबरऽ माँगऽ
पोयच्या उड़ंतो गोरसऽ माँगऽ
दासी को पीस्यो माँगऽ ववूऽ को राँध्यो माँगऽ
दीयऽ को परोस्यो माँगऽ।

भावार्थ: देवी को पूजने वाली क्या माँगती है। वह रना देवी से दूध, पूत, आह्वात अर्थात् अखण्ड सौभाग्य तथा पुत्र पौत्र माँगती है। उसके घुटने धँस जायँ, इतना गोबर और पाँचों उँगलियाँ और पूरा हाथ घी दूध में डूबे रहें। अर्थात् अकूत गोधन माँगती है, गोबर से खाद हो और पशु खेती में काम करें। साथ ही दासी का पिसा हुआ तथा बहू का बनाया हुआ और बेटी का परोसा हुआ भोजन आराधिका रनुबाई से माँगती है।

किसान का समूचा जीवन प्रकृति के बीच अपने खेतों, खलिहानों, कुआँ, बावड़ी के बीच और मुक्ताकाश के नीचे गुजरता है। ऐसी स्थिति में अगर वह देवी देवता के स्वरूप की कल्पना करता है, तो क्या अचरज है कि वह अपनी आराध्य देवी की सुन्दरता, उसके अंगों की उपमा अपनी खेती बाड़ी की फसलों से ही दे देता है। कितना सौन्दर्यबोध है इस गीत में –

थारो काई काई रूपऽ बखाणूऽ
थारी अँगळई मूँगऽ की सेंगळई रनुबाई
सोरठऽ देशऽ सी आई होऽ
थारा दातऽ दाड़िमऽ का बीजऽ रनुबाई
थारा डोळा लिम्बू की फाँकऽ रनुबाई
थारो सीसऽ नारेळरी रेखऽ
थारो भालऽ सूरिजमलऽ तेजऽ रनुबाई
थारा हाथऽ चम्पा का छोरऽ रनुबाई
थारा पाँय केळई का खम्बऽ रनुबाई

भावार्थ: हे रनुबाई! तेरे किस–किस स्वरूप का वर्णन करूँ? तेरे हाथ की उँगलियाँ मूँग की फली जैसे लम्बी और पोरदार नाजुक हैं। हे देवी, तू सौराष्ट्र से आई है। तेरे दाँत अनार के बीजों जैसे सुन्दर चमकीले गठीले हैं। तेरी आँखें नीबू की फाँक जैसी रसीली हैं। तेरे हाथ चम्पा के छौर जैसे नाजुक हैं और पैर कदली के खम्ब जैसे गठे सुगढ़ नरम हैं। हे माँ! तेरे भाल पर सूर्य का तेज है। मैं तेरे किस–किस रूप का वर्णन करूँ।

नारी की अभिलषित कामना होती है, वह सबसे भिन्न, सबसे अलग श्रृंगार करे। ऐसे उपादानों से श्रृंगार करे जो अप्रतिम हो। ऐसे ही गणगौर पर्व पर गाये जाने वाले गीतों में इस भाव के दर्शन होते हैं। एक गीत में रनुबाई अर्थात् गौरीदेवी, ईश्वर अर्थात् शिव से निवेदन करती है, कि वे उसे आकाश में चमकने वाले महान् तेजस्वी शुक्र तारे की टीकी गढ़वा दें। श्रृंगार के लिए देवी जिन–जिन वस्तुओं की माँग करती है, वे सभी वस्तुएँ अलभ्य हैं। किन्तु देवी विराट से श्रृंगार की कामना करती है। श्रृंगार का यह अनुपम गीत है। इस गीत के संबंध में महान् साहित्यकार डॉ धर्मवीर भारती ने कहा है, कि निमाड़ के इस श्रृंगार गीत पर कोटि–कोटि श्रृंगार गीत न्यौछावर हैं। गीत में पति ईश्वर से अनुनय है गौरीजी का –

शुक्र को तारो रे ऽ ईशवर ऊँगी रह्यो ऽ
कि तेकी मख ऽ टीकी गढ़ाव ऽ
शुक्र को तारो रे ऽ ईशवर ऊँगी रह्यो ऽ
कि धुरुव की वादळई रे ऽ ईशवर तुली रही ऽ
कि तेकी मख ऽ तहबोळ रंगाड़ ऽ

शुक्र को तारो रे ऽ ईशवर ऊँगी रह्यो ऽ
कि सरग की बिजळई रे ऽ ईशवर चमकी रही ऽ
कि तेकी मख ऽ मगजी लगाड़ ऽ
शुक्र को तारो रे ऽ ईशवर ऊँगी रह्यो ऽ
कि नवलख ऽ तारा ऽ रे ईशवर चमकी रह्योऽ
कि तेकी मख ऽ चौळई सिवाड़ऽ
शुक्र को तारो रे ऽ ईशवर ऊँगी रह्यो ऽ
कि चाँद अरु सूरज ऽ रेऽ ईशवर ऊँगी रह्यो
कि तेकी मख ऽ टूकी लगाड़ ऽ
शुक्र को तारो रे ऽ ईशवर ऊँगी रह्यो ऽ
कि वासुकी नाँग ऽ रे ऽ ईशवर बलखई रह्या
कि तेकी मख ऽ वेणी गुथाड़ऽ
शुक्र को तारो रे ऽ ईशवर ऊँगी रह्यो ऽ
कि असी छंद ऽ वाळई रे ऽ गवरल गोरड़ी
शुक्र को तारो रे ऽ ईशवर ऊँगी रह्यो ऽ

भावार्थ: हे ईश्वर, आकाश में जो महातेजस्वी शुक्र का तारा चमक रहा है ना, उसी की मेरी टीकी गढ़वा दो। हे ईश्वर, ध्रुव वाली दिशा में बरसने के लिए जो काली-काली बदली गुमड़ रही है, उसी बदली के रंग से चुँदरी (चुनरी) रंगवा दो। हे ईश्वर, जो स्वर्ग में बिजली कड़क रही है, उसी बिजली की मेरी साड़ी में मगजी लगवा दो। हे ईश्वर, आकाश में जो नवलक्ष तारे चमचमा रहे हैं, उसी से मुझे चोली सिलवा दो। हे ईश्वर, चाँद और सूरज जो चमक रहे हैं, उसी से मेरी चोली में टूकी लगवा दो। हे ईश्वर, जो वासुकी नाग बल खा कर इठला कर चल रहा है, उसको मेरी वेणी में गुँथवा दो। रानी गौर देवी की ऐसी कामना को सुनकर ईश्वरजी सिर्फ़ एक ही बात कह पाते हैं, ''हे गौरल, हे गौरवर्णी, तूने श्रृंगार के लिए जिन-जिन वस्तुओं को माँगा है, मैं वे वस्तुएँ तुझे देने में समर्थ नहीं हूँ, तू तो बड़ी ही छन्दवाली अर्थात् नखरे करने वाली है।''

लोक में सहज भक्ति का बड़ा निर्मल भाव है, हम जैसे हैं, वैसे हमारे भगवान् हैं। हम जैसे खाते हैं, जैसे रहते हैं, वैसे ही हमारे आराध्य करते हैं। सच कहते हैं, भगवान् भावना के भूखे हैं। इसीलिए निमाड़ की लोकदेवी का प्रसाद भी उसके साधक जुवार की धानी और मूँगफली का लगाते हैं, इसे 'मेवा' कहते हैं। गणगौर गीतों में निमाड़ी कृषक के खानपान, रहन-सहन, रीति रिवाज का बड़ा उदात्त दर्शन होता है। जब विदाई की जाती है, तो मार्ग में भूख से निजात के लिए बेटी के लिए भोजन के स्थान पर गेहूँ का आटा सेंककर, उसमें गुड़ मिलाकर, एक कपड़े की पोटली में रथ के भीतर रख दिया जाता है।

जिस भावना से घर आई बेटी की विदाई की जाती है, उन्हीं भावों से जवारों के गले मिलकर उन्हें विदाई दे कर विसर्जित किया जाता है। गीत है-

म्हारी रनुबाई होऽ
सासरऽ जायऽ
उनका धणियर राजा से आणों लई जायऽ

- 13, समर्थ परिसर, ई-8 एक्स्टेन्शन, बावड़िया कला,
पोस्ट ऑफ़िस त्रिलंगा, भोपाल - 462039, मो.: 09424440377, 09819549984

श्रृद्धांजलि

उनकी स्मृति में जिनकी कमी कभी पूरी नहीं हो सकती...

कोरोना काल में जो लोग हमें सदा के लिए छोड़कर गए उन आत्माओं को
कला समय परिवार की ओर से विनम्र श्रृद्धांजलि

आलेख

हमारे समय की साहित्यिक पत्रकारिता

– शशिभूषण द्विवेदी

मेरे बोलने के लिए जो विषय यहां निश्चित किया गया है, उसकी शुरूआत के लिए मैं कुछ ऐसे शब्दों की मदद लूंगा, जो सांस्कृतिक, साहित्यिक और आधुनिक विमर्शों के लिए तो महत्वपूर्ण हैं ही; साथ ही समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी जीवन और साहित्य के कुछ ऐसे क्षितिजों की खोज इन शब्दों के माध्यम से की जा सकती है, जिनका महत्व आज साहित्य और पत्रकारिता के संबंधों को कुछ नए संदर्भों के साथ समझाने में समर्थ है। चूंकि इन शब्दों को मैंने अंग्रेजी साहित्य-चिंतन से लिया है, इसलिए मेरी कोशिश है कि इनका अनुवाद तो करूं ही, साथ ही इनके मूल अंग्रेजी रूप को भी ज्यों का त्यों रखूं ताकि समझदारी की मूल अवधारणा को भी क्षति नहीं पहुंचे और शब्दों को समझने-बूझने और उन्हें 'डिकन्सट्रक्ट' करने की आपकी-हमारी मूल बौद्धिक स्वतंत्रता को भी क्षति नहीं पहुंचे। हिंदी में प्राय: ऐसा होता रहा है कि लोगबाग अपना अनुवाद तो अंग्रेजी का थोप देते हैं; मूल शब्द की चर्चा नहीं करते। इससे एक भ्रम की स्थिति पैदा होती है। मूल बात पर आते हुए मैं अपनी बात शुरू कर रहा हूं :

हम सब सौंदर्यशास्त्रीय बोध या एसथेटिक्स से परिचित हैं। मेरे पर्चे में यह प्रश्न आएगा कि क्या मीडिया और खासतौर से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के संदर्भ में हमारे समाज और साहित्य और साहित्यिक पत्रकारिता के संदर्भ में यह शब्द बेमानी हो गया, या इसकी कोई उपादेयता बाकी है या जिस किसी तरह के भी समाज में हम रह रहे हैं, या जिस समाज के कदम-कदम पर हमारा साबका पड़ रहा है, वह समाज क्या पूरा नहीं तो अंशत: ही अ-सौंदर्यशास्त्रीय हो गया है, और उसे इस शाश्वत बोध की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

एक दूसरा शब्द-युग्म है 'पेशेन्टली नैस्टी' यानि वह व्यक्ति या वह समाज जो धीरजपूर्वक समाज में, साहित्य में या मीडिया में गंदगी का हिमायती है ताकि उस पर कोई आरोप न लगे (क्योंकि वह शोर-शराबा नहीं कर रहा है) और वह अपना काम करता रहे अपना स्वार्थ साधता रहे। सूचना के लिए बता दूं कि बाकी यूरोप में यह शब्द अंग्रेजों के लिए प्रयुक्त होता है (इसे मैंने ऑक्सफोर्ड प्रवास में जाना) कि वे बड़े धीरज के साथ भीतर से यानि अंतर्मन में गंदे होते हैं और अपने आर्थिक, बौद्धिक, सामरिक और बाकी स्वार्थों को इसी अंदाज में पोषित करते हैं।

मेरे मन में यह प्रश्न इस शब्दावली की मदद से उठा है कि क्या अंग्रेजों की यह गंदगी हमारे मीडिया या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में निरंतर घर करती जा रही है और हमारे सामने धीरज के साथ इस गंदगी को झेलने-सहने के अलावा कोई चारा नहीं बच पा रहा है ? हमारे मीडिया का संदर्भ इस शब्द-युग्म से यूं जुड़ता है कि उसके लिए पैसा (यानि इस संदर्भ में विज्ञापन) बाकी सारी नैतिकताओं और सौंदर्यशास्त्रीय बोधों से ज्यादा महत्वपूर्ण है। यानि वह बड़े धीरज के साथ अंग्रेजों की तरह (याद कीजिए, उन्होंने बिना किसी खून खराबे के कैसे भारत पर कब्जा मात्र एक कंपनी के माध्यम से कर लिया, जो शुद्ध बनियापा करने के लिए भारत में घुसी थी) अपनी गंदगी शुद्ध धन-पिशाच बनकर फैलती जा रहा है और हम उसका न तो कुछ बिगाड़ पा रहे हैं, और न एक पलायनवादी की तरह ही सही, उससे पीछा छुड़ा पा रहे हैं। इस गंदगी ने हमें एक दारुण और ज्यादा गंदी स्थिति में डालकर असहाय कर दिया है।

और तीसरा जो बहु-प्रयोग में आने वाला शब्द है, वह है हमारा मध्यम वर्ग यानि मिडिल क्लास; जिसको न तो अपने सौंदर्यशास्त्रीय बोध की चरमराहट की कोई चिंता रह गई है और न उस गंदगी की, जो 1990 के बाद ही आवारा पूंजी के द्वारा इस देश में इस धीरज के साथ फैलाई गई है कि हम और हमारा सौंदर्यशास्त्रीय बोध कहीं के न रहे। माना जाता है कि अमरीकियों के बाद सारी दुनिया में अगर कोई मध्यम वर्ग सबसे ज्यादा अ-सौंदर्यशास्त्रीय और गंदा हुआ है तो वह भारतीय समाज का वह हिस्सा है,जिसने सामाजिक बेहतरी के बड़े-बड़े काम; यानि विधवा विवाह की शुरुआत, सतीप्रथा का अंत, शिक्षा का प्रचार-प्रसार और गलत को गलत कहने की हिम्मत अपने में पैदा की है और समाज को रास्ता दिखाया है। बंगाल का पुनर्जागरण और फिर बाकी देश में उसका फैलाव; यह सब और इससे जुड़े तमाम नैतिक सुधार इसी कारण संभव हुए, क्योंकि हमारे मध्यम वर्ग ने अठारहवीं शताब्दी के फ्रांसीसी समाज (फ्रेंच क्रांति 1789 में हुई) की तरह यह महसूस करना शुरू कर दिया था कि उसी के लिए कुछ होगा। अभी का भारतीय मध्यम वर्ग सिर्फ पैसे के इर्द-गिर्द ऐसा चिपटा है कि वह इतने तक से अनजान है कि उसका बच्चा किस वर्ग में पढ़ रहा है, या स्कूल जाने के नाम पर क्या कर रहा है। वह उसकी मोटी फीस अदा करने की जिम्मेदारी को अपना सर्वस्व मानकर संतुष्ट है और यह सब कुछ पैसे की होड़ के कारण हुआ है।

कुछ शब्दों से शुरूआत की जो बात मैंने पहले की थी,वह समाप्त हुई। अब मैं मूल बात पर आ रहा हूं :

जिस इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का अमरीकियों के बाद सारी दुनिया में सबसे ज्यादा अ-सौंदर्यशास्त्रीय कहा जाने वाला भारतीय मध्यम वर्ग पूरी तरह दीवाना हो गया है, और उसके हाव-भाव, बोध, पोशाक, भाषा आदि की नकल वह एकदम बेसुरे अंदाज में करता जा रहा है, उस मीडिया पर बात करने से पहले यह सुरसा-प्रश्न हमारे सामने खड़ा हो जाता है कि क्या इस मीडिया में साहित्यिक पत्रकारिता है भी; या यह भी संदेह के घेरे में है।

जिस पत्रकारिता को हम 'जल्दी का साहित्य' (या 'लिटरेचर इनहरी') कहते हैं, अगर वह आदमी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में एक अद्‌भुत विकृति या सतहीपन या सस्ती सामयिक लोकप्रियता का छिछोरा शिकार होता जा रहा है; तो क्या अब वह वह प्रश्न पूछना बहुत ही आवश्यक है, या एकदम तड़प भरा नहीं हो गया है कि वहां साहित्यिक पत्रकारिता कैसे हो, कैसे हो रही है, या कैसे और किस तरह होगी; क्योंकि पत्रकारिता मात्र सारी आधारभूमि 'क्यों', 'कहां', 'कैसे' और 'कब' के चार ककारों पर या अंग्रेजी के ह्वेन, ह्वेयर, ह्वाई और ह्वाऊ जैसे कुछ सर्वनामों पर टिकी है।

■

सच तो यह है कि आवारा पूंजी के हमारे इस बेरहम समय में (क्योंकि हम 'समय' की बात तो चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे हैं, उस समय में या उसके भीतर, या उससे जुड़ा जो 'जीवन' है, उसकी बात या तो एकदम ही नहीं करते,या कम करते हैं) जब पत्रकारिता मात्र पर ही कई-कई लंगड़े प्रश्नचिन्ह लगने लगे हैं तो साहित्यिक पत्रकारिता तो वैसे भी कभी सामान्यजन या 'मास' की चीज ही नहीं रही। और वैसे ही अपने अस्तित्व के इतिहास के साथ से ही क्या साहित्य कभी 'मास' की चीज रहा ? अगर रहा होता तो टीएस इलियट साहित्य या कविता को 'सर्वाधिक सशक्त मस्तिष्क की सबसे उदात्त कार्रवाई' या "The most sublime activity of the most fertile sharp brain" कैसे कहते ? हमारे काव्य-शास्त्र में या साहित्य-व्याकरण के दूसरे शास्त्रों में इसे 'कवि प्रतिभा' कहा गया है, जिसे अंग्रेजों ने 'जीनियस' से अभिहित किया।

तो यह लगभग स्पष्ट हो गया कि साहित्य मात्र ही सबके लिए नहीं होता और लेखन एकदम उदात्त-कर्म तो है ही ('रचनाकार' को हमारे क्लासिक ग्रंथों में 'ईश्वर अंश' माना गया है यह अद्‌भुत बात है कि इस अंश का प्रयोग महाभारत का सबसे दुष्ट चरित्र काईंया किस्म का शकुनी लाक्षागृह बनाने वाले पुरोचन नामक वास्तुकार के लिए करता है); और जब नोबेल पुरस्कार विजेता सॉल बेलो, जो जीवन-भर शिकागो विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र पढ़ाते रहे-यह कहते हैं कि साहित्य और साहित्यकार जब ज्यादा लोकप्रिय होने लगे तो समझना चाहिए कि उनकी 'आत्मा का प्रहरी कहीं चूक रहा है', तब तो यह स्पष्ट हो ही गया कि साहित्यिक पत्रकारिता या उसके प्रति रुझान या उसका संपादन-कर्म न तो कोई आसान काम है और न सबके बूते का। इसलिए अगर मैं कहूं कि यह तो हमारे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के बूते की चीज ही नहीं रही तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी; क्योंकि हमारे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में तो वैसे भी प्रतिभा का भयंकर दुष्काल है। सच्चाई तो यह है कि जिस देश में ट्रकों के मालिक, या फिल्म सिटियों के मालिक टीवी चैनलों के भी मालिक हों, वहां किसी भी तरह के उदात्त साहित्य-कर्म की उम्मीद हम कैसे कर सकते हैं।

हमारे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में सबके पास पहुंचने की जो अनुदार और अनुदात्त होड़ आवारा पैसे के मोह में लगी है, उसने हमारे भीतर के सौंदर्यशास्त्रीय बोध को इतना बेरहम और बेशर्म कर दिया है कि पैसा हमारे सारे कर्मों को या सारी प्रतिभा को आँकने-समझने का मापदंड हो गया है और हमारे भीतर की सारी उदात्त और रचनात्मक आकांक्षाएं यहीं आकर दम तोड़ दे रही हैं। जाहिर है कि जहाँ सॉल बेलो वाली लोकप्रियता की आधारभूमि पर पैसे की होड़ सारी चीजों को दोयम दर्जा देने पर सशक्त रूप से आमादा हो, और कोई भी संवदेनशील शक्ति उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं पा रही है, वहां न तो साहित्य में कोई ताकत बचेगी न पत्रकारिता में। जाहिर सी बात है कि बाकी जरूरी बातों, दर्शनों की तरह ही वहां साहित्यिक पत्रकारिता भी सिर्फ एक संज्ञा होगी, उसका कोई लोकोपयोग नहीं हो पाएगा। वह चंद धन-पिशाचों की तिजोरी के आंकड़े तो बढ़ाएगी, वह मस्तिष्क पैदा नहीं करेगी जो गांधी या रूसो या टैगोर पैदा करे और हमारे सामाजिक जीवन के रेशे-रेशे में एक सकारात्मक चमक की उदात्तता तथा सौंदर्यशास्त्रीय बोध भर दे। वह तो धीरज के साथ गंदगी फैलाने का काम ही करेगी। हमारे समय में वैसे नकली चमकों की कमी नहीं है, लेकिन उसमें जीवन अनुपस्थित है और उसकी शिक्षा मस्तिष्क को उदात्त बनाने में नहीं दिखती। जहां संपादकों की तनख्वाह या कमाई उनके सामाजिक स्तर का मापदंड बनेगी; वहां जो परोपकारी या उत्तम, या देशभक्त या उदार या उदात्त होगा, उस पर कई-कई प्रश्नचिन्ह लगेंगे, या लगाए जाएंगे और वह महाभारत के युधिष्ठिर, भीष्म या कर्ण जैसे सही आदमियों की तरह चौतरफा हमलों का शिकार होगा या होता रहेगा। वहीं पर इलियट का भोक्ता यानि "Sufferer" हमारे समय का 'शिकार' बन जाता है और यह बिल्कुल अनायास नहीं है कि हमारा समय सही आदमी को 'बैक-वेंचर' बनाने की हर तरकीब का इस्तेमाल धन-पिशाच बनकर कर रहा है। हम सब शिकार लोगों की हालत धीरजवाली गंदगी ने कस्तूरी मृग की कर दी है और हम गंदगी के सही स्रोतों को जान तो रहे हैं, उसे साफ करने के लिए कुछ नहीं कर पा रहे। ऐसे दारुण क्षण इतिहास में नए नहीं हैं, लेकिन इसके रूपक या मेटाफर्स इतने जालसाज हैं कि शकुनी-चालों के सामने अपने समय के सबसे उदात्त भीष्म लोग भी अपने को अवश-विवश पा रहे हैं। यह वर्ग आवारा पूंजी का मजा उसी अंदाज में ले रहा है, जिस अंदाज में तबाह होकर प्रो. लॉस्की ने कहा था : "Vulger people entertain vulgarity" यानि दोयम दर्जे का गंदा आदमी गंदगी का ही आनंद मनाता है।

इलेक्ट्रानिक मीडिया में साहित्य जो थोड़ा-बहुत है भी, वह भी इस चुटकुलेबाज नौटंकी का बेरहम शिकार है और इंटरनेट आदि पर जो साहित्य दिखता है, वह भी मार्गदर्शक कम, सामान्यजन के लिए लोकप्रियता का मनोरंजन ज्यादा है।

गुलशन नंदा लोकप्रिय चाहे जितने हों, वे प्रेमचंद या अज्ञेय नहीं हो सकते - और न निर्मल वर्मा हो सकते हैं। क्या कोई मरदूद भी यह कहेगा कि 'सरस्वती' को 'मनोहर कहानियाँ' की तरह देखा-परखा जाए। कुछ विदेशों चैनलों, बीबीसी वर्ल्ड, या हिस्ट्री आदि का बेहतर साहित्य नजर आ जाता है, लेकिन हमारे चैनल इसकी आवश्यकता नहीं समझते। हमारे चैनलों में सब कुछ जबरदस्ती ठूँसा हुआ नजर आता है, जबकि इन चैनलों में एक स्वाभाविकता होती है। हाल में बीबीसी पर ऐसा ही एक कार्यक्रम महान लेखक अर्नेस्ट हेविंग्वे पर देखकर अपने चैनलों की बौद्धिक दरिद्रता पर रोना आ गया। दो घंटे का यह कार्यक्रम अद्‌भुत था। मीडिया को वही करना चाहिए जो हमारे समय का जीवन उससे उपेक्षा रखे न कि उसे वह करना चाहिये जो वह हम पर थोपना चाहता है।

लेकिन इस सबके बावजूद स्थिति निराशा की नहीं है। इसे समय का चक्र मानकर आशावान रहते हुए अपना कर्म करने की आवश्यकता है और इकबाल की तरह अपने पर भरोसा रखने की भी:

कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
सदियों रहा है दुश्मन दौरे-जमाँ हमारा

इस पर्चे में जो बातें मैंने कही हैं, उनके लिए अनुभव और ज्ञान मुझे साहित्य और पत्रकारिता दोनों से मिला है और मैं साहिर लुधयानवी को उद्‌धृत करते हुए अपनी बात समाप्त करना चाहता हूं : 'दुनिया ने तजुर्बात वो इवादिस की शक्ल में/जो कुछ भी दिया है उसे लौटा रहा हूं मैं।'

संपर्क : महावीर गेस्ट हाउस 31/ए, के.सी. रोड, सिलीगुड़ी-734001 (पं. बंगाल)
मो. 09775938214

■

आलेख

शब्दों का निराला बादशाह-सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

- राकेश शर्मा 'निशीथ'

हिंदी साहित्य में अनेक महाकवि हुए हैं। इन्हीं कवियों में एक ऐसे भी थे, जिन्होंने काव्य, उपन्यास, कहानी, रेखाचित्र, निबंध संग्रह, आलोचनात्मक ग्रंथ, अनुवाद, जीवनियां, नाटक अर्थात समस्त विधाओं पर अपना प्रभुत्व कायम किया है। कोलकाता में हिंदी साप्ताहिक पत्र मतवाला में योगदान करते समय कवि ने निराला उपनाम अपनाया था और अपनी प्रतिभा के बल पर उस नाम को साहित्य जगत में स्थायी रूप से प्रतिष्ठित भी किया।

उन्होंने समन्वय, मतवाला, सुधा, कला, रंगीला, सरोज एवं पत्रों का संपादन कर अपनी संपादन कला का प्रमाण भी दिया। स्वच्छंदतावादी काव्यांदोलन के पुरस्कर्ता तथा हिंदी के प्रगतिवादी आंदोलन के अप्रत्यक्ष नेतृत्व करने वाले निराला ने शास्त्रीय नियमानुसार महाकाव्य चाहे न लिखा हो, परंतु उनकी कृतियों में जिस औदात्य का स्फुरण है, गरिमा व व्यापकता है, उससे उन्हें युग निर्माता कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा। निरालाजी ने अपने जीवन और रचनाओं में रामकृष्ण और विवेकानंद को सबसे अधिक आत्मसात किया है।

निरालाजी के पिता पं. रामसहाय त्रिपाठी मूलरूप में उन्नाव जिले में गढ़कोला गांव के निवासी थे। वे बंगाल की महिषादल स्टेट मेदिनीपुर के राजा के यहां उच्च पदाधिकारी थे। उनके यहां माघ शुक्ल 11 संवत 1956 तदनुसार 21 फरवरी 1899 को रविवार को निरालाजी का जन्म हुआ निरालाजी ने अपने जन्म के विषय में कहा था, मैं सरस्वती का पुत्र हूं इसलिए मेरा जन्मदिन बसंत पंचमी के दिन ही मनाया जाए।

पंडित रामसहाय को अंग्रेजी स्कूल में निराला को भेजना स्वीकार न था। अत: सामान्य बंगला पाठशाला में निराला को भेजा गया। 1907 में उनका नाम प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने पर महिषादल की हाईस्कूल की तीसरी कक्षा में लिखवाया था। इसी विद्यालय में निराला को बंगला और संस्कृत का सामान्य ज्ञान हुआ। आठवीं नौवीं कक्षा तक पहुंचते पहुंचते निराला अंग्रेजी, संस्कृत, गणित और इतिहास का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। किंतु विद्यालयीय शिक्षा के स्तर में निराला सामान्य छात्र ही रहे।

निरालाजी ने अध्ययन के साथ-साथ अपने शारीरिक स्वास्थ्य पर भी ध्यान केंद्रित किया। नित्य प्रति दिन कसरत करना, कुश्ती लड़ना, घुड़सवारी करना, तालाब में तैरना और बंदूक चलाना उनका प्रमुख कार्य था। संगीत के प्रति भी उनकी रुचि थी। एक बार उनकी परीक्षा में एक निबंध का प्रश्न आया था, तुम अपने जीवन में क्या बनोगे इसके उत्तर में उन्होंने लिखा- 'निराला बनूंगा'। तभी उन्होंने मतवाला अथवा निराला बनने की कल्पना कर ली थी।

चौदह वर्ष की छोटी अवस्था में चांदपुर जिला फतेहपुर में निराला की शादी हुई। उनकी धर्मपत्नी का नाम मनोहरा देवी (मनोरमा देवी) था। प्रकृति प्रिया मनोहरा देवी के प्रति आकृष्ट होने के कारण युवा निराला का मन पुस्तकों से उचटने लगा था। ऐंट्रेंस परीक्षा के दिन नजदीक आए... । गणित की परीक्षा में वह उत्तर पुस्तिका में पद्माकर के श्रृंगार रस वाले कवित्त लिखकर घर चले आये थे। मनोहरा देवी से निराला की दो संतानें, रामकृष्ण त्रिपाठी एवं सरोज उत्पन्न हुई। बचपन में माता के देहांत, विवाह के कुछ दिनों बाद पत्नी की मृत्यु और पुत्री सरोज की मृत्यु से निराला टूट गये थे। कहते हैं कि निराला को इतना गहरा सदमा पहुंचा कि वे घंटों श्मशान में बैठे रहते थे। अपने दुख के संबंध में उन्होंने लिखा था-

दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूं आज जो नहीं कही ?

वह केवल नौवीं कक्षा तक पढ़ पाये थे। उनकी पहली कविता 1 जून 1920 में कानपुर से मासिक पत्रिका प्रभा में प्रकाशित हुई उनकी अंतिम कविता पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है, यह उजागर करती है कि निराला का कवि कर्म बराबर जीवन और कविता के बीच में भिड़ंत में लगातार लिप्त रहा है। निराला की रचना जूही की कली, मुक्त छंद के नये प्रयोग के कारण सरस्वती से लौटायी गई। इसका इनके मन पर गहरा आघात हुआ। सरोज स्मृति में उन्होंने कहा-

कवि जीवन में व्यर्थ ही व्यस्त
लिखिता अबाध गति मुक्त छंद
पर संपादकगण निरानंद
वापस कर देते पढ़ सत्वर
दे एक पंक्ति दो में उत्तर

इन सबके होते हुए भी निरालाजी तनिक मात्र विचलित तो जरूर हुए परंतु वे अपने उसी उत्साह के साथ रचनात्मक क्षेत्र में निरंतर कार्य करते रहे। गुरू गोविंद सिंह जैसे राष्ट्र नायक का यशोगान करते हुए निराला ने परिमल में कहा था-

सवा-सवा लाख पर
एक को चढ़ाऊँगा
गोबिंदसिंह निज
नाम जब कहाऊँगा।।

वर्ष 1920 में महात्मा गांधी के आह्वान पर असहयोग आंदोलन प्रारंभ हुआ। असहयोग आंदोलन से प्रभावित होकर युवक स्कूल एवं कॉलेजों का परित्याग कर रहे थे। निरालाजी ने इसी अवसर पर देश प्रेम का एक गीत लिखा।

बंधु मैं अमल कमल
चिर सेवित चरण युगल
शोभामय शांति निलय पापताप हारी
मुक्तबंध, घनानंद मुद मंगलकारी
बधिर विश्व चकित गीत सुन भैरव वाणी
जन्म भूमि मेरी जगन्महारानी

इस रचना के प्रकाशन की इच्छा जब निराला के मन में आई तो उन्हें अपना नाम सुर्जकुमार तेवारी अच्छा नहीं लगा। तब उन्होंने अपना नाम सूर्यकांत त्रिपाठी रखा। आधुनिक हिंदी कविता में पहली बार विधवा, भिक्षुक, बादल राग, जागो फिर एक बार, कुकुरमुत्ता, तोड़ती पत्थर, मंगहू, मंगहा रहा, झींगुर, डटकर बोला जैसी सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ की कविताएं निराला ने लिखीं। उनकी मानवतावादी भूमिका अराधना में दिखती है।

रंग में यह गागर भर दो
निष्प्राणों को रसमय कर दो
मां, मानस के सित शतदल को
रेणु-गंध के पंख खिलाओ
जग को मंगल मंगल के पग
पार लगा दो, प्राण मिला दो

वास्तव में मर सकता है या मरना चाहता है, शीश हाथ धर जो जीता है, वहीं तो निराला है। निरालीजी ने अणिमा में कहा था-

मरण को जिसने वारा है
उसी ने जीवन भरा है

निराला की दृष्टि अपने युग के यथार्थ से कभी नहीं हटी। अतिशय कल्पनाशील छायावादी काव्योत्थान की वेला में भी वे साधारण जीवन की ओर दृष्टि निक्षेप करते रहे। दीनजन के दु:ख को देखकर उनकी उफनती करूणा का दृष्टव्य है-

सह जाते हो
उत्पीड़न की क्रीड़ा सदा निरंकुश नग्न,
हृदय तुम्हारा दुर्बल होता भग्न
और जगत की ओर ताक कर,
दु:ख हृदय का क्षोभ त्यागकर
सह जाते हो।

निराला दासप्रथा जैसी कुरीतियों के प्रबल विरोधी थे। अमानवीय भेदभाव निराला को कचोटता रहता था तभी तो अनामिका, भूख, वह तोड़ती पत्थर जैसी कविताओं के माध्यम से निराला ने मानव-समाज में यथार्थचेतना के विकास पर बल दिया। निराला की कविताओं में भयाभास नहीं दिखता। निराला की भिक्षुक कविता जहां भिक्षुकों के यथार्थ का प्रकट करती है, वहीं सामंतों के लिए बहुत कुछ कहती है-

पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लुकुटिया टेक
मुट्टी भर दाने को भूख मिटाने को
मुंह फटी पुरानी झोली को फैलाता
पछताता पथ पर आता।

कुकुरमुत्ता जैसे नगण्य पौधे को सर्वहारा वर्ग का प्रतीक बनाकर निराला ने काव्य विषय के जिस रूप में उसे प्रस्तुत किया वह अपने आप में अनूठा प्रयोग है। कुकुरमुत्ता उपेक्षित होकर भी स्वयं को तुच्छ नहीं मानता-

वही गंदे में उगा देता हुआ बुत्ता
पहाड़ी से उठे सर ऐंठकर बोला कुकुरमुत्ता
'अबे, सुन बे, गुलाब
भूल मत गर पाई खुशबू, रंगोआब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट।
कितनों को तूने बनाया है गुलाम।'

दीन दलितों के समाज का चित्रण कर देने मात्र से मानवतावादी कवियों को संतोष नहीं मिलता। विश्व वेदना से भरा कविहृदय दुखियों का हाहाकार सुनकर उन्हें गले लगाने को आतुर हो उठता है। निराला ने जीवन के कटु यथार्थ को देखकर घृणापूर्ण प्रतिक्रिया व्यक्त न करके अधिकांश रूप में सहानुभूति एवं करुणा ही प्रकट की है। भिक्षुक कविता में उन्होंने कहा है-

वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता
पथ पर आता
पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी-भर दाने को भूख मिटाने को
मुंह फटी पुरानी झोली को फैलाता-

विधवा कविता के माध्यम से निराला के टूटे तरू की टूटी लता-सी दीन भारतीय विधवा के असीम दु:ख पर करुणा व्यक्त की है-

वह दुनिया की नजरों से दूर बचाकर
रोती है अस्फुट स्वर में,
दुख सुनता है आकाश धीर
निश्चल समीर
सरिता की वे लहरें भी ठहर-ठहर कर।

निराला समाज के रूढ़ बंधनों से मुक्ति की मानसिकता में जीना चाहते थे। वे ऐसे आदर्श की कल्पना कर रहे थे, जिसमें वर्ग और जातिगत भेदों की कारा सार्वजनिक मानवता को ग्रसित करने का प्रयत्न न कर सके। उनकी दृष्टि में सभी उन्नति के मार्ग पर प्रशस्त होने के अधिकारी हैं। वे साम्प्रदायिकता के खिलाफ भी थे। वे हिंदू मुसलमान जैसी अलगाव की भावनाओं से समाज को दूर रखना चाहते थे। उन्होंने कहा-

नहीं आज का यह हिंदू
आज का यह मुसलमान
आज का ईसाई, सिक्ख
आज का यह मनोभाव
आज की यह रूपरेखा
नहीं यह कल्पना

सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य करने के साथ-साथ गिरिजा विवाह संबंधी पौराणिक प्रसंग को सामने लाकर निराला ने व्यंग्य की धार को काफी पैदा बना दिया। अपनी जन्म कुंडली में दो विवाहों संबंधी भाग्य लेख पर भारतीय समाज की भाग कर्म ज्योतिष आदि प्रचलित सामाजिक मान्यताओं/लोक विश्वासों को लक्ष्य करके वे हंसते हैं और कहते हैं-

पढ़ लिखे हुए शुभ दो विवाह
हंसता था मन में बढ़ी चाह
खंडित करने का भाग्य अंक

देखा भविष्य के प्रति अशंक

छायावाद का युग है और निराला इस युग के श्रेष्ठ कवि हैं। वास्तव में निराला की सौंदर्य चेतना आयामी है। निराला की कविता में धरती और आकाश का, मनुष्य और प्रकृति का शब्द और संसार का अनूठा सौंदर्य है। मानवीय सौंदर्य चित्रण के अंतर्गत निराला ने नारी और पुरुष दोनो के ही सौंदर्य का वर्णन किया है। निराला ने नारी और प्रकृति दोनों को ही विधाता की अनूठी सृष्टि माना है। उन्होंने अपनी कविताओं में बादल, बिजली, वर्षा, प्रात:, संध्या, सार-सागर-सरिता, सूर्य, चांद, बाग-बगीचा, नगर-डगर, ऋतु पर्व आदि का बड़ा मनोहारी रूप चित्रित किया है। निराला को प्रकृति का कण-कण प्रिय लगता है, लेकिन ऋतुओं में उन्हें वसंत ऋतु सर्वाधिक प्रिय है। इसलिए उन्हें वसंत का अग्रदूत भी कहा जाता है। वसंत के विषय में उन्होंने लिखा-

सखि, वसंत आया
भरा हर्ष वन के मन
नवोत्कर्ष छाया
किसलय वसना नव-वय-लतिका
मिली मधुर प्रिय उर तरु पतिक
मधुप वृंद बंदी
पिक स्वर नभ सरसाया।

निरालाजी साधु प्रकृति के निश्छल, दानी साहित्यकार थे। वे अपने जूते, चप्पल, रजाई आदि सब कुछ गरीबों को दे डालते थे। उनके इस व्यवहार के विषय में मैथिलीशरण गुप्तजी ने एक बार लिखा था-

अगर कही नरसिंह निराला
हो जाता हत चेत न हाय
तो क्या स्वार्थ साध पाते तुम,
उसे बनाकर बूढ़ी गाय।

महादेवी ने निराला की सादगी और उनकी आर्थिक स्थिति के विषय में कहा था कि एक बार रक्षा बंधन के दिन निराला रिक्शा में बैठ उनके घर राखी बंधवाने आये। यह उनका नियम था। उन्होंने राखी बांधी। जब निराला जाने लगे तो उन्होंने महादेवीजी से एक रुपया मांगा। जब महादेवीजी ने रुपया देते हुए पूछा यह किस लिए चाहिए? तो वह बोले, आठ आने तुम्हें राखी बांधने के दूंगा और आठ आने रिक्शा वाले को किराया दूंगा। एक ओर तो निरालाजी की आर्थिक स्थिति इतनी खराब थी तो दूसरी ओर उन जैसा त्याग करने वाला कोई नहीं था। एक बार कोई गरीब औरत उनके सामने आई तो उसे अपनी नई रजाई दे दी, किसी दरिद्र महिला के बच्चे पर शाल दिया, नंगे चलते ग्वाले को अपने जूते दे दिये, रेल सफर करते हुए भिखारियों को दस-दस के नोट बांट दिये और जब 21,000 रुपये का पुरस्कार मिला तो एक विधवा स्त्री को दे दिया।

एक बार की बात है कि फिराक ने निराला के गद्य-पद्य में मुस्कराते, नवाब आदि शब्दों का प्रयोग का मजाक उड़ाया तब निराला ने तय किया कि उर्दू लिखकर फिराक को चिढ़ाना है। निराला ने उर्दू साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का अध्ययन करते हुए अनेक गजलें लिखीं थीं, जो वर्ष 1943 में बेला संग्रह में संकलित हुई हैं।

निराला के व्यक्तित्व का निरूपण सुसंस्कृति मानवीय मूल्यों पर आधारित व्यक्तित्व को पृथक रखकर नहीं किया जा सकता है। चाहे उनके निजी जीवन का हो या फिर साहित्यक जीवन का, निराला जो जीते थे वहीं लिखते थे। जो लिख देते वही जीते थे। उनके जीवन और उनके साहित्य में कहीं कोई विसंगति नहीं मिलती। निराला से संबद्ध समालोचना करते हुए डॉ रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है, निराला का संपूर्ण काव्य व्यक्तित्व विरुद्धों के सामंजस्य की अवधारणा से सक्रिय है। नि:संदेह भारतीय संस्कृति, सामाजिक मूल्यों और व्यक्तिपरक अनुभतियों की त्रिवेणी प्रवाहित हुई हैं वह सांस्कृति चेतना के रूप में निराला की वाणी में है। आधुनिक कवियों में निराला का सौंदर्य बोध जितना विशिष्ट एवं व्यापक है उतना हिंदी ही नहीं, किसी भी भारतीय भाषा के आधुनिक कवि का नहीं है, हां केवल रवीन्द्रनाथ टैगोर को अपवाद माना जा सकता है।

छायावादी कवियों में सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का व्यक्तित्व और काव्य दोनो ही अपनी अंतर्विरोधी प्रकृतियों, संघर्षों एवं अल्हड़पन के कारण काफी दिनों तक विवाद के विषय में बने रहे। छायावादी कवियों में निराला में पुरुषोचित गुण सबसे अधिक था। उनका जीवन अंतर्विरोध से भरा था। वे भारतीय परंपरा की गत्यात्मकता के पोषक भी हैं और अत्यधिक आधुनिक भी।

छंद के बंधन को निराला ने ही तोड़ा है। आज जिस मुक्त छंद को प्रयोगवाद के प्राण के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है और हिंदी कविता आज तक जिस लकीर को पीट रही है, वह निराला की ही देन है कविता को गद्य का रूप होते हुए भी उसे कविता बनाये रखने का श्रेय निराला को जाता है। उन्होंने लोकगीत, कजली, ख्याल जैसी शैलियों को जैसा प्रस्तुत किया है वह अपने आप में अभिनव है। उनके उपमान चित्रात्मकता या सौंदर्यात्मक विशेषता के आधार पर प्रयुक्त न होकर विचार के प्रमुख साधन के रूप में चुने गये हैं। उन्होंने नवीन जीवन संदर्भों के साथ गीत की नई विधाओं को जन्म दिया। नई कविता तथा अगीत कविता की अनेक विधाओं को उत्पन्न किया।

नागरी प्रचारिणी, वाराणसी के प्रधानमंत्री सुधाकर पांडेय ने अपने स्मृति गंगा ग्रंथ में निराला को सिंह-संस्कृति का सिंह-कवि कहा है- जैसे सिंह प्रकृति की गोद में सोता जागता रहने वाला अपराजेय सम्राट होता है, उसी प्रकार निराला अपने साहित्य काल के सम्राट सर्जक थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान की दिशा की सार्थक पहचान की। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से पुरानी दूषित परंपराओं की निरर्थकता को बखूबी उकेरा है। पश्चात्य सभ्यता के प्रभाववश व्याप्त रही निरी निरर्थक संस्कृति पर भी अपनी पैनी दृष्टि डाली।

निराला की काव्यात्मक कालजयी क्षमता को देखते हुए डॉ. रामचंद तिवारी ने कहा था, निराला चाहे जितने बड़े क्रांतिकारी रहे हों और उनका साहित्य हमारे सामाजिक संगठन की असंगतियों, रूढ़ियों और अंतर्विरोधों को उजागर करने में चाहे जितना समर्थ हो, यह निर्विवाद है कि उनका विराट व्यक्तित्व किसी भी वाद की सीमा में बंध नहीं सकता। डॉ. दूधनाथ सिंह के अनुसार निराला की हर रचना एक संपूर्ण स्वतंत्र जीवन दृष्टि है। नामवर सिंह ने निराला के जीवन को उथल-पुथल और संघर्षपूर्ण जीवन माना है। उन्होंने लिखा है, निराला का जीवन अत्यंत उथल-पुथल का, संघर्षों का जीवन रहा है, किंतु उनकी कविताओं में केवल व्यक्तिगत संघर्षों का चित्र रहता तो उनका युगांतकारी महत्व न होता।

बाल साहित्य आज की एक लोक प्रचलित विधा है। बालकों,

विशेषत: किशोरों के व्यक्तित्व के विकास हेतु प्रेरणा प्रद बाल साहित्य प्रस्तुत करना आज का एक राष्ट्रधर्म माना गया है। पश्चिमी साहित्य में बालोपयोगी साहित्य का निर्माण जिस गति और जिस परिणाम में हुआ है, उससे प्रेरित होकर हिंदी के साहित्यिक समाज सुधारकों का ध्यान इस विधा की ओर आकृष्ट होने लगा। हिंदी में सर्वप्रथम भारतेन्दु ने बालबोधिनी पत्रिका द्वारा इस विधा की शुरूआत की थी। निराला ने इस विधा में अपना महत्वपूर्ण अंशदान किया। उनकी बालोपयोगी कृतियां हैं।- भक्त ध्रुव, भक्त प्रहलाद, भीष्म, महाराणा प्रताप, सीख भरी कहानियां, रामायण की अंत: कथाएं आदि।

मतवाला पत्र में निराला ने छद्म नाम से हिंदी लेखकों के गलत प्रयोगों पर कटाक्ष किया और अपना नाम निराला रखा। उन्होंने एक दार्शनिक नाम से भी कई दार्शनिक निबंध लिखे। उनका मत था, किसी देश को उन्नति के शिखर पर संस्थापित करने का सबसे उत्तम उपाय यही है कि उसके बच्चों की सार्वभौमिक शिक्षा की ओर ध्यान दिया जाये। उसके सामने देश के आदर्श बालकों के चरित्र रखे जाएं। भक्त प्रहलाद की भूमिका में कहा-ऐसे धर्मनिष्ठ सरल और दृढ़व्रत बालक के चरित्र का प्रचार स्खलित मति, निर्वीर्य, निरूत्साह, पथभ्रष्ट कर देने वाली कुशिक्षा से बचाने के लिए देश के बालकों में अवश्य होना चाहिए।

बाल साहित्य की दृष्टि से महाभारत और उसका सार संक्षेप,संक्षिप्त महाभारत निराला की एक महत्वपूर्ण कृति है इसे बच्चों के लिए उपयोगी बनाने के लिए उन्होंने संस्कृत, बंगला और हिंदी की कई पुस्तकों के आधार पर तैयार किया था। बाल साहित्य के विषय में एक बार निराला ने लिखा था, मैं कितना बड़ा साहित्यकार क्यों न माना जाऊँ पर मेरी लेखनी तभी सार्थक होगी, जब इस देश के बाल गोपाल मेरी कोई कृति पढ़कर आनंद विभोर होंगे।

बच्चों के साथ खेलना तथा उनसे बातें करने में उन्हें विशेष आनंद मिलता था। अपने स्वभाव से ही वे अपने समवयस्कों तथा बच्चों-बूढ़ों में घुलमिल जाते थे। जब कभी वे साहित्यकारों के बीच रहते तो गूढ़ साहित्यिक चर्चा करते उनकी कविताएं सुनते तथा अपनी सुनाते, हंसते-हंसाते पर जब वे साहित्येत्तर व्यक्तियों के बीच होते तो उनके साथ गुल्ली डंडा से लेकर ताश तक खेलने का आनंद लेते थे। बाल साहित्य के अतिरिक्त निरालाजी की अन्य रचनाएं हैं-

काव्य-अनामिका,परिमल, गीतिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, अणिमा, अपरा, नए पत्ते, बेला, अर्चना, गीत गुंज, कविश्री सांध्य काकली, (मरणोपरांत प्रकाशित)।

उपान्यास-अप्सरा, अलका, प्रभावती, निरूपमा, काले कारनामें, चमेली, (अधूरा उपन्यास), चोटी की पकड़ (अधूरा उपन्यास)।

कहानी संग्रह-लिली, सखी, चतुरी चमार,देवी, सुकुल की बीबी।

रेखाचित्र- कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा।

निबंध- प्रबंध पद्य, प्रबंध प्रतिभा, प्रबंध परिचय।

जीवनी- भक्त ध्रुव, राणाप्रताप, भीष्म, भक्त प्रहलाद, शकुंतला।

अनुवाद-वैदिक साहित्य वात्स्यायन कामसूत्र, आनंद मठ, कपाल-कुंडला, चंद्रशेखर, दुर्गेश नंदिनी, कृष्णकांत की विल, युगलांगुलीय, रजनी, देवी चौधरानी, राजा रानी, विषवृक्ष, राजसिंह, तीन नगीने, श्रीरामकृष्ण वचनामृत, भारत में विवेकानंद।

समालोचना- रवीन्द्र कविता-कानन, पंत और पल्लव, चाबुक।

भाषा अलंकार- हिंदी बंगला का तुलनात्मक व्याकरण, रस अलंकार, हिंदी बंगला शिक्षक व्याकरण।

टीका- तुलसीकृत रामायण की टीका, महाभारत (संक्षिप्त), रामायण

निरालाजी शोध और जलादर रोग से ग्रस्त हो गये थे और उनके सारे शरीर में सूजन आ गई थी। इस रोग का मुख्य कारण यकृत विकार तथा हृदय के पास रक्त संचार के अवरोध का होना था। 15 अक्टूबर, 1961 को महाप्राण निराला ने अपना पार्थिव शरीर दारागंज, प्रयाग में छोड़ दिया। उनकी मृत्यु पर डॉ राधाकृष्ण ने कहा। निराला भारत के ऋषि-मुनियों की ही परंपरा में एक सच्चे ऋषि और विद्रोही, क्रांतिकारी तथा युगप्रवर्तक कवि थे। उनके काव्य में ऐसी मानवता के दर्शन होते हैं। जो जाति या राष्ट्र की सीमाओं में बंधी नहीं है। वह सत्य के पुजारी और धुन के पक्के थे उनकी साहित्य की परंपरा में नई शैलियों का समावेश किया तथा प्रजातंत्र, मानवता एवं प्रगति के लिए अपना सारा जीवन लगा दिया। निराला को निराला इसलिए कहा जाता है कि वे आत्महंता थे। लेकिन उनकी और मनुष्य में गजब आस्था थी। वे एक महान कवि के साथ एक महामानव भी थे।

संपर्क -1/5569 बलबीर नगर विस्तार, शाहदरा-दिल्ली-110032,
मो.9868538530

कला समय

आगामी अंक जून-जुलाई 2021

अरुण तिवारी जी के अमृत महोत्सव पर

केन्द्रित विशेषांक

प्रेरणा समकालीन लेखन के लिए पत्रिका एवं प्रेरणा सीनियर सिटीजन टाइम्स समाचार पत्र के संपादक
श्री अरुण तिवारी जी, साहित्यकार/पत्रकार के यशस्वी जीवन के 75 वर्ष पूर्ण होने पर विशेष सामग्री...अवश्य पढ़ें...
-संपादक

आलेख

दलित आंदोलन के संदर्भ में रैदास की रचनात्मकता

– डॉ. सेवाराम त्रिपाठी

रैदास के बारे में विचार करना, उनके युग के बारे में, उनकी दार्शनिक प्रपत्तियों, जीवन संघर्षों और उनके समय की जटिलताओं को समझना बहुत सरल कार्य नहीं है। संत रविदास को ज्यादा बेहतर तरीके से रैदास के रूप में ही पहचाना जाता है। वे बिना पढ़े-लिखे कहे जाते हैं, लेकिन मध्य युगीन भक्ति साहित्य में उनका प्रभाव, प्रसिद्धि और महत्व का रेखांकन निरन्तर होता रहा है। भक्ति आंदोलन और निर्गुण भक्ति धारा में कबीर के बाद उनका विशेष दर्जा है। अनेक संग्रहों में उनकी रचनाओं का संकलन हुआ है। राजस्थान के हस्तलिखित ग्रंथों में उनकी वाणियां पाई जाती हैं। अभी तक उन पर धर्मपाल सैनी की रैदास की बानी, अनंतदास की रैदास परचई (संपादक-शुकदेव सिंह) संत रविदास और उनका काव्य-रामानंद शास्त्री, संत रैदास: व्यक्तित्व और कृतित्व-संगम लाल पाण्डेय, संत रविदास की भक्ति भावना (विश्व भारती प्रकाशन, चंडीगढ़) संत रविदास का निर्गुण सम्प्रदाय-डॉ. धर्मवीर, संत रविदास विचारक और कवि-डॉ. पद्म गुरुचरण सिंह, संत सुधासार-वियोगी हरि जैसी पुस्तकें प्रकाशित हैं। रविदास की ख्याति का आधार कविता के साथ उनका संत होना भी है। रैदास की बानी के संबंध में नाभादास की यह पंक्ति विशेष रूप से प्रसिद्ध है- ''संदेह ग्रंथि खण्डन, निपुन बानि विमल रैदास की।''

संतों की बाणियों का संकलन करने वाले वियोगी हरि का मानना है कि- ''महात्मा रैदास की बड़े ऊंचे घाट की बानी है। प्रेम पराभक्ति का कई शब्दों में बड़ा ही विशद निरूपण उन्होंने किया है। समता और सदाचार पर बहुत बल दिया गया है। भक्ति रस का ऐसा सुन्दर परिपाक अन्यत्र कम देखने में आता है। खंडन-मंडन की ओर उनका ध्यान नहीं था। सत्य की शुद्ध निर्मल अभिव्यक्ति ही अपरोक्षानुभूति उनका परम ध्येय था। भाषा ने भी भाव का मूक अनुसरण किया है। अनेक जनपदों के शब्दों का उनकी वाणी में समावेश हुआ है।'' (संत सुधा सार, पृष्ठ-179)

इधर के वर्षों में उन्हें रैदास के बरक्स रविदास के रूप में प्रचारित करने के उद्यम हो रहे हैं। जूते सीते-सीते ही उन्होंने ज्ञान भक्ति का ऊंचा पद प्राप्त किया और अपनी वाणी के द्वारा मध्य कालीन भारतीय समाज के पाखण्डों का जोरदार खंडन किया है। ऐसा इसलिये संभव हो सका कि रविदास समाज से जो अनुभव प्राप्त करते हैं और समाज के जिन हाहाकारों, उत्पीड़नों को देखते हैं; उसे बिना किसी परहेज के अपने शब्दों में अभिव्यक्ति करने की कोशिश करते हैं। उनकी वाणियों में केवल भक्त हृदय का उल्लास भर नहीं हैं बल्कि सामाजिक विडम्बनाओं, छुआछूतों और आडम्बरों का जलता हुआ लावा भी है। वे भक्ति में संपूर्ण समर्पण के पक्षधर हैं। अपने भावों को सहज ढंग से संप्रेषित करना उनकी कहन की, शैली की विशेषता है। एक उदाहरण देखें-

''तू मोंहि देखैं हौं तोहि देखौं, प्रीत परस्पर होइ।
तू मोंहि देखैं तोहि न देखौं, यह मति बुधि सब खोई।।
सब घटि अंतर रमसि निरंतर, मैं देखन नहिं जाना।
गुन सब तोर मोर सब औगुण, कृत उपकार न माना।।
मै तैं तोरि मोरि सुसमझि सों कैसे करि निस्तारा।
कहि रैदास कृष्न करुणामय, जै जै जगत अधारा।।''

उनकी भक्ति में ताप नहीं बल्कि एक तरह की निर्मल शांति, सद्भाव और सहिष्णुता के भाव प्रसंग ही दिखाई पड़ते हैं। उनकी रचनाशीलता में दु:ख, दैण्य, आत्म निवेदन के रंग की छटायें बिखरी हुई हैं। इसमें पश्चाताप के धूसर रूप भी सहजता से प्राप्त होते हैं। ऐसा लगता है कि उन्होंने अपना हृदय ही उड़ेलकर रख दिया है-

''हरिसा हीरा छांड़ि कै, करै आन की आस,
ते नर जमपुर जाहिगे, सत भाषै रैदास।
जा देखे घिन ऊपजै, नरक कुण्ड में बास,
प्रेम भगति सो उन धरे प्रगटत जन रैदास।।''

रैदास के जीवन के बारे में उनके जीवन संघर्षों के बारे में जो अनुश्रुतियां हैं वे उन्हें अत्यन्त गरीबी में पला हुआ और सीधा सच्चा होने के कारण घर से अलग किये जाने के वृतान्तों से जोड़ती है। कुछ विद्वानों ने इन्हें रामानंद का शिष्य तथा कबीर का समकालीन मानने का प्रयास किया है। गुरुग्रंथ साहिब के अनुसार ''नामदेव, कबीर, तिरलोचन साधना सैन तरे/निर उनको गुन देखो आई देही सहित कबीर सिधाई।'' संत रैदास कबीर के समकालीन नहीं माने जा सकते क्योंकि कबीर जब अपनी प्रसिद्धि पर थे तब इनकी साधना के चित्र दृष्टि गोचर नहीं होते। मीराबाई के पदों में रैदास के गुरु मानने के साक्ष्य मिलते हैं- ''गुरु मिलिया रैदास जी दीन्हीं ज्ञान की गुटकी/रैदास संत मिले मोही सतगुरु दीन्हा सुरत सहदानी'' और ऐसी अनेक किवदंतियां प्रसिद्ध हैं। रैदास की भक्ति में पराधीनता के लिये कोई स्थान नहीं है। पराधीनता के बारे में वे बहुत निश्चयपूर्वक विचार करते हैं। जो पराधीन है वह दीन है। वे संघर्षहीनता में धर्म नहीं देखते बल्कि आदमी का मुख्य काम संघर्षशीलता ही बताते हैं। यदि आदमीं संघर्षशील नहीं है तो वह निश्चय ही पराधीन है उसकी विकास प्रक्रिया बाधित होती है-

''पराधीनता पाप है, जान लेहु रे मीत
रैदास दास पराधीन सों कौन करै है प्रीत।
पराधीन का दीन क्या, पराधीन बेदीन
रैदास पराधीन का सबैही समझे हीन।।''

संत परम्परा में ज्ञान का महत्व सर्वविदित है। संत परम्परा नहीं समूचे भक्तिकाल में ज्ञान को अनेक सरणियों में देखने परखने को उद्यम किये गये हैं। रैदास ने लिखा-

1. **नाम मूल है ज्ञान कौ नाम मुक्ति कौ दरबार**
   जो हृदय हरि बसै परहिं न बयौ पार।।
2. **रैदास सत्य के आसर सदा सुख पाये**
   सत्य ईमान न छांड़िये, जग जाये तो जाये।।

रैदास जी के विश्वास की यह पराकाष्ठा है कि सत्य, ईमान हरगिज न छोड़िये जग चला जाये तो चला जाये। जिसको जो कहना है कहता रहे अपनी टेक मत छोड़िये क्योंकि सत्य का ज्ञान वास्तविक ज्ञान है। सत्य को जाने बिना आदमी अनजान रहता है।

''सत्य विद्या को पढ़े सदा प्राप्त करो ज्ञान।
रैदास कहे बिन विधा नर को जान-अनजान।।''

रैदास जी की वाणियों में गुरु का बहुत महत्व है, ऐसा नहीं है कि अकेले उनके यहाँ गुरु के महत्व का प्रतिपादन किया है। कबीर के यहां, मीरा के यहां इसे विस्तार से देखा जा सकता है। संत भक्तों की समूची परम्परा में इसके प्रमाण लगातार मिलते रहे हैं-

''गुरु ग्यान दीपक दिया बाती दई जलाय।
रैदास गुरु ग्यान चाशु बिना, किमि मिटई भ्रम फंद।।''

बिना गुरु के बिना उनकी सीख के संसार के भ्रम और माया के सभी आवरण खत्म नहीं होते। वे अपने विवेक से ईश्वर, धर्म, भक्ति, पूजा, तप-जप का खण्डन करते हैं। उन्हीं के शब्दों में-

''रैदास न पूजह देहरा, अरु न मसजिद जाय।
जह तहँ ईस का बास है तहँ तहँ सीस नवाय।।''

रैदास की सोच प्रणाली में व्यवहारिक जीवन की प्रविधियां मौजूद हैं, व्यक्ति के चरित्र की उच्चता को कैसे पहचाना जाय। जीवन में जन्म से अधिक कर्म का महत्व है क्योंकि कर्म के द्वारा ही मनुष्य का आचरण निर्धारित होता है- यह एक ऐसा सत्य है, जिससे इनकार नहीं किया जा सकता है।

''रैदास जन्म के कारनै होते न कोउ नीच
नर कूँ नीच करि डारि है ओछे करम की कीच
रैदास सुकरमन कारन सौं नीच ऊँच हो जाय
करई कुकरम जौ ऊँच भी तौ नीच कहलाय।''

रैदास जीवन की व्यवहारिकता की बात करते हैं। जाति में जन्म लेने से कोई महान नहीं बनता। व्रत करने पूजा करने तिलक लगाने और माला फेरने से भी कुछ नहीं होता बल्कि यदि कुछ संभव है तो जीवन के रास्ते से जाना जीवन की गतिविधियों को सही ढंग से पहचानना और उनको अपने व्यवहार और आचरण में ढालना। जाति की महत्वहीनता के परिप्रेक्ष्य में यह महत्वपूर्ण टिप्पणी है जिसे गौर से देखा जाना चाहिये-

''रैदास जन्म के कारने होत न कोउ नीच।
नर कूं नीच करि डारि है ओछे करम की कीच।
जात जात में जात है ज्यों केलन में पात
रैदास न मानुष जुड़ि सकै जौं लौं जात न जात।''
रैदास ने श्रम के महत्व को स्वीकार करते हुये लिखा है-
''श्रम को ईश्वर जानि कै, जो पूजै दिन रैन
रैदास तिनि संसार मा, सदा मिले सुख चैन।''

इसी तरह वे सम्यक आजीविका पर जोर देते हैं। ऐसी आजीविका जिसमें हम अपने पारिवारिक दायित्वों को सही ढंग से निर्वाह कर सकें-

''ऐसा चाहौं राज मैं, जहाँ मिले सकन को अन्न।
छोट बड़ी सब समन बसें, रविदास रहे प्रसन्न।।''

वे सभी मतमतांतरों के एक होने की बात कहते हैं, इसी से जीवन सहज सौम्य और उन्मुक्त रह सकता है अन्यथा जीवन में अनेक तरह की गांठें पड़ सकती हैं-

''रैदास हमारा राम जी, सोई है रहमान।
काशी-कावा जान नहिं, दोनों एक समान।।
मुसलमान सों दोस्ती, हिन्दुओं के कर प्रीत।
रैदास जाति सम राम की सभी हमारे मीत।।''

निर्गुण संतों की एक बड़ी विशेषता इस रूप में भी पहचानी जाती है कि उन्होंने घर गृहस्थी छोड़कर जंगल में धूनी रमाने और भजन करने के स्थान पर अपने घर में रहते हुये अपने श्रम के कार्य करते हुये जीवनयापन की बातें कही हैं। मेरी समझ में यह जीवन की व्यवहारिकता का अद्भुत गुण है। इन्द्रराज सिंह ने लिखा है कि- ''इन संतों ने कभी भी घर छोड़कर वन या एकांत में जाकर तपस्या करने को ठीक नहीं कहा है। प्रत्युत सत्संग भजन और कीर्तन आदि में दत्तचित्त में होकर मन को एकाग्र करने का साधन बताया है, जिनमें स्मरण प्रमुख है।'' (संत रविदास-पृष्ठ 29)

संत परम्परा में सहज साधना और सहज समाधि की बात की जाती है-

''चलत-चलत मेरो मन थाक्यों, मौपै चल्यों न जाई,
साई सहज मिलयो सोई सन्मुख कह रैदास बताई।''

जीवन की असारता के बारे में भी रैदास कहते हैं-

''रैन गंवाई सोइ कै, दिवस गंवायो सोहरे।
हीरा यहु तन पाइ कै कौड़ी बदले जाई रे।।
साधु संगति पूंजी भई रे, वस्तु लई निरमोल रे।
सहज बरधवा लाद कर, चहुं दिस टॉडो डोल रे।।
जैसा रंग कसंब का तैसा यह संसार रे।
रमइया रंग मजीठ का कह रैदास चमार रे।।''

रैदास के बारे में अनेक तरह से विचार हुआ है। उनकी कविता पर, उनकी भक्ति पद्धति और वैराग्य पर उनकी दार्शनिक प्रवृत्तियों पर उनके व्यवहारिक जीवन सन्दर्भों के बारे में लेकिन विगत 30-35 वर्षों से दलित आंदोलन की व्याप्ति के प्रसंग में भी उन पर बहुत कुछ कहा और लिखा गया है। तेह सिंह ने दलित पुनर्जागरण और रैदास के बारे में कुछ निष्कर्ष निकाले हैं। ''कबीर दलित पुनर्जागरण के पहले बड़े कवि हैं तो रैदास दूसरे बड़े कवि हैं। बाकी सभी संत दलित कवि भी दलित पुनर्जागरण के ही कवि हैं जो सगुण-सवर्ण चिन्तन परम्परा के समानांतर निर्गुण-दलित चिन्तन परम्परा को आगे बढ़ाते हैं। ...विचारों और मतों की इसी विद्रोही और विरोधी परम्परा में दलित संतों की निर्गुण काव्य धारा में दलित पुनर्जागरण का सशक्त स्वर सुनाई दिया।'' (श्रमण परम्परा और गुरु रैदास-पृष्ठ 70)

करतार सिंह ने अपने एक लेख में रैदास को साम्यवाद के अग्रदूत के बारे में पहचानने का प्रयत्न किया है। बेगमपुरा आनंदधाम की अवधारणा है जिसमें वर्गहीन समाज का चित्रण किया गया है। बेगमपुरा न केवल अपराध, भय व पीड़ा से ही मुक्त है, विषमता से भी पूर्ण तथा रहित है। वहां सब समान हैं। कोई पहला, दूसरा या तीसरा नहीं है। रैदास जी के यहां बेगमपुरा दरअसल एक फेन्टेसी या यूटोपिया है। वह बेगमपुरा लोक जीवन से आया हुआ एक स्वप्न है, जो अपने तई वर्णाश्रम व्यवस्था के खिलाफ नया रूप धारण कर आया है।

पुरुषोत्तम अग्रवाल ने कबीर के परिप्रेक्ष्य में जो कहा है, उसे एक विशेष संदर्भ में रैदास और इन्हीं जैसे संतों के बारे में मान्य किया जा सकता है। पुरुषोत्तम अग्रवाल के शब्दों में- ''कबीर की कविता सपना देखती है, ऐसे अमरलोक का जिसमें मनुष्य की मनुष्यता ही महत्वपूर्ण है। कबीर के देखे सपने में न ब्राम्हण है, न क्षत्रिय, न सैयद, न शेख है, न शूद्र है, न वैश्य। कबीर का सपना न तो सामाजिक मुक्ति तक सीमित है न आध्यात्मिक मुक्ति तक। उनके सपने में ये दोनों मुक्तियां एक-दूसरे का विरोध नहीं पोषण करती हैं।'' (अकथ कहानी प्रेम की-कबीर की कविता और उनका समय-पृष्ठ 407)

''बेगम पुरा सहर की नाउँ, दुख अन्दोह नहीं तेहिं ठाऊँ। ?
न तस वीस खिराजु न माल खौफन खता न तरस जुबाल।।
काइम दाइम सदा पाति साही दोम न सेम एक सौ आही।
आवादान रहम औजूद जहां गनी आप उसै मावूद।।
जोइ सैल करै सोई मावै, हरम महल ताको अटकावै।
कहि रैदास खलास चमारा, जो हम सहरी सो मीत हमारा।।''

रैदास की कविता में तत्वज्ञान एवं चिन्तन भूमि में भक्ति के रूप रंग और रहस्य तो हैं ही समाज को आगे ले जाने और सहज ढंग का जीवन जीने की आकांक्षा भी है और एक विराट सपना भी। जाहिर है कि रैदास की जनजीवन से सम्बद्धता रही है। उनकी कविता में जनजीवन का यथार्थ और उसका बहुआयामी चित्रण मिलता हैं। अपनी कविता के मार्फत वे अपनी समाज संबद्धता की घोषणा भी करते हैं और सामाजिक जटिलताओं की तह में जाकर उनके सपने तोड़ने का प्रयत्न भी करते हैं। वे एक ऐसा समाज रचने का स्वप्न देखते हैं, जिसमें आडम्बर रूढ़ियां और गैरबराबरी न हों। उनकी आदर्श समाज संरचना खोखले मूल्यों को अस्वीकृत करती है। उन्हीं के शब्दों में-

''सब में हरि हैं, हरि में सब हैं हरि अपने निज जाना।
अपने आप साख नहिं दूसरे जानैं जानन हारा।।''

रैदास के काव्य में लोक जीवन के दु:ख दर्द हैं एवं इन दु:खों से मुक्ति की आकांक्षा के विराट स्वप्न भी हैं। भक्ति आंदोलन के व्यापक परिप्रेक्ष्य में उनकी कविता और उनका चिन्तन महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकने की सामर्थ्य रखता है। समूचे लोक को मुक्त करने का एक प्रयास है। उनकी कविता और यही उनकी सबसे बड़ी ताक़त है। रैदास की बानियों में जनता के सरोकार हैं और ये सरोकार वाचिक परम्परा एंव पदों के द्वारा लिखित परम्परा के रूप में लोक में विस्तार पाकर जनजागृति की अकूत क्षमता भी रखते हैं। यही उनके काव्य की एवं उनके चिन्तन भूमि का एक अनोखा पक्ष है। जिसका महत्व दिनों दिन बढ़ता जायेगा।

संपर्क : रजनीगंधा, 06, शिल्पी उपवन, श्रीयुत नगर, रीवां म.प्र.- 486001, मो.7987921206

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com मो. 9425678058, 0755-2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला, संस्कृति और विचार के अछूते पहलुओं पर सृजनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबंध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेजे जा सकते है।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें। सदस्यों को पत्रिका साधारण डाक से भेजी जाती है। नहीं मिलने की स्थिति में सदस्यता शुल्क के साथ ` 120/- का प्रतिवर्षानुसार रजिस्टर्ड डाक शुल्क अतिरिक्त भेजा जाना होगा।

-संपादक

आलेख

प्रेमचंद का अधूरा उपन्यास 'मंगल-सूत्र' और इसके 'मंगल-सूत्र' की तलाश

कमल किशोर गोयनका

हिन्दीं में प्रगतिशील समीक्षकों ने जहां समीक्षा में नई दिशाओं तथा नये प्रतिमानों का उद्घाटन किया, वहां उन्होंने उसे विकृत एवं पथभ्रष्ट भी किया। हिंदी के अधिकांश प्रगतिशील समीक्षक मार्क्सवादीपार्टियों के सदस्य रहे और इन्होंने साहित्य को मार्क्सवादी चिंतन और उसके राजनीतिक हितों की दृष्टि से देखने-परखने तथा प्रचारित एवं विकसित करने का एक संगठित आंदोलन ही शुरू कर दिया। इसकी शुरूआत इंग्लैंड से सज्जाद जहीर, डॉ. मुल्कराज आनंद, डॉ. के. एस. भट्ट, डॉ. जे.सी.घोष, डॉ. एस. सिन्हा एवं एम.डी. तासीर ने की और वहां 'दि इंडियन प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन' की स्थापना की और उसका मैनिफेस्टो प्रेमचंद को भेजा। प्रेमचंद ने 'हंस' के जनवरी, 1936 के अंक में 'लंदन में भारतीय साहित्यकारों की एक नई संस्था 'शीर्षक से इस मैनिफेस्टों को प्रकाशित करते हुए इसका स्वागत किया। प्रेमचंद ने इस मैनिफेस्टो के कुछ अंश 'हंस' में प्रकाशित किए। इन मैनिफेस्टो में कहा गया कि भारतीय समाज में एक क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहा है, पुराने विचारों तथा विश्वासों की जड़ें हिलती जा रही हैं। पिछली दो सदियों में भक्ति और वैराग्य का भावुकतापूर्ण साहित्य लिखा जाता रहा और विचार एवं बुद्धि का बहिष्कार हुआ। इस सभा का उद्देश्य है कि साहित्य को इन अप्रगतिशील वर्गों के आधिपत्य से निकालकर 'जलतर के निकटतम संसर्ग' में लाया जाए, उसमें जीवन और वास्तविकता लाई जाए। ''इस मैनिफेस्टो में आगे कहा गया है'', हम भारतीय सभ्यता की परंपराओं की रक्षा करते हुए अपने देश की पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों को बड़ी निर्दयता से आलोचना करेंगे और आलोचनात्मक तथा रचनात्मक कृतियों से उन सभी बातों का संचय करेंगे, जिससे हम सभी मंजिल पर पहुँच सकें। हमारी धारणा है कि भारत के नए साहित्य को हमारे वर्तमान जीवन के मौलिक तथ्यों का समन्वय करना चाहिए और वह है, हमारी रोटी, हमारी दरिद्रता का, हमारी सामाजिक अवनति का और हमारी राजनीतिक पराधीनता का प्रश्न। तभी हम इन समस्याओं को समझ सकेंगे और तभी हममें क्रियात्मक शक्ति आएगी। वह सब कुछ जो हमें निष्क्रियता, अकर्मण्यता और अंधविश्वास की ओर ले जाता है, वह सब कुछ जो हममें समीक्षा की मनोवृत्ति लाता है, जो हमें प्रियतम रूढ़ियों को भी बुद्धि की कसौटी पर कसने के लिए प्रोत्साहित करता है, जो हमें कर्मण्य बनाता है और हममें संगठन की शक्ति लाता है, उसी को हम प्रगतिशील समझते हैं।''

इसके साथ ही 'हंस' के इस संपादकीय में 'दी इंडियन प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन' द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों का भी उल्लेख है जिनमें संस्था ने भारत में लेखकों की संस्थाएँ बनाने, प्रगतिशील साहित्य की सृष्टि और अनुवाद करने के साथ भारत के 'सांस्कृतिक अवसाद' एवं 'भारतीय स्वाधीनता और सामाजिक उत्थान' की ओर बढ़ने का संकल्प किया तथा 'हिदुस्तानी' को राष्ट्रभाषा और 'इंडो-रोमन लिपि' को राष्ट्रलिपि स्वीकार कराने का उद्योग भी शामिल है।

प्रेमचंद के लिए इस मैनिफेस्टो के उद्धृत अंश तथा स्वीकृत प्रस्तावों में से अधिकांश सहज रूप से स्वीकार्य थे, क्योंकि वे लगभग 30 वर्षों से इसी चिंतन-धारा को लेकर साहित्य की रचना कर रहे थे। प्रेमचंद की प्राथमिकताएँ थीं-देश की स्वाधीनता, निर्धनता एवं शोषण से मुक्ति, भारतीय संस्कृति को मानवीय तथा मर्यादाशील परंपराओं की रक्षा, व्यक्ति और समाज का परिष्कार एवं उत्कर्ष, अंधविश्वास, जड़ता तथा निष्क्रियता को भंजित करके जागृत, कर्मशील, स्वाभिमानी, देशभक्त, सेवाव्रती समाज का निर्माण, आलोचना तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भारत की मूल कृषि संस्कृति की रक्षा तथा समाज में सामंजस्य एवं समन्वय की स्थापना आदि। प्रेमचंद ने 'इंडो-रोमन लिपि' के प्रस्ताव का अवश्य विरोध करते हुए लिखा कि हम नागरी-लिपि को पूर्ण बनाकर उसे सभी भारतीय भाषाओं के लिए उपयोगी बनाना चाहेंगे।

यहाँ इस मैनिफेस्टो के उल्लेख का अभिप्राय यह है कि इसमें मार्क्स का कहीं उल्लेख नहीं है, पूँजीपतियों के शोषण तथा सर्वहारा द्वारा खूनी संघर्ष की चर्चा नहीं है और न कम्युनिस्ट पार्टी तथा रूस के लेनिन तथा स्टालिन का संकेत है और न इस 'प्रगतिशील लेखक-संघ' को मार्क्सवाद तथा कम्युनिष्ट पार्टी से संबद्ध करने का ही संकल्प है। अत: प्रेमचंद लखनऊ में होने वाले 'प्रगतिशील लेखक-संघ' की अध्यक्षता को स्वीकार करते समय तथा उसका भारत में स्वागत करते समय वे निश्चय ही मार्क्स, लेनिन, स्टालिन, रूस तथा चीन किसी से भी प्रेरित-संचालित 'प्रगतिशील लेखक-संघ' का अभिनंदन नहीं कर रहे थे। प्रेमचंद ने 'प्रगतिशील लेखक संघ' की अध्यक्षता भी अनिच्छा से स्वीकार की। उन्होंने सज्जाद जहीर को 15 मार्च, 1936 को लिखे पत्र में लिखा था कि मिस्टर कन्हैया लाल मुंशी, डॉक्टर जाकिर हुसैन, पंडित जवाहर लाल नेहरू तथा पंडित अमरनाथ झा में से किसी को सभापति बनाएँ, क्योंकि ये मुझसे अधिक उपयुक्त और बेहतर होंगे।1 इस पर भी सज्जाद जहीर का दवाब रहा और उन्होंने सभापति बनना स्वीकार कर लिया। हमारे प्रगतिशील समीक्षक तथा लेखक 'प्रगतिशील लेखक संघ' को कम्युनिष्ट पार्टी एवं मार्क्सवादी चिंतन से जोड़ते समय बड़े उत्साह में कई दशकों से यह राग अलापते रहे हैं कि प्रेमचंद ने इसी चिंतन-पद्धति पर आधारित 'प्रगतिशील लेखक-संघ' के प्रभावी अधिवेशन का सभापतित्व किया था और उनका भाषण इसी प्रगतिशील विचारधारा का उद्घोष था। मुझे अफसोस के साथ लिखना पड़ता है कि इन सभी प्रगतिशीलों कम्युनिस्ट पार्टी के साहित्यकारों ने यह भाषण ठीक प्रकार से पढ़ा भी नहीं है और यदि पढ़ा भी है तो उन्होंने प्रेमचंद की इन पंक्तियों को नजर अंदाज कर दिया है, जिसमें उन्होंने कहा था कि 'प्रगतिशील लेखक-संघ' यह नाम मेरे विचार में गलत है। साहित्यकार या कलाकार स्वभावत: प्रगतिशील ■

होता है। अगर यह उसका स्वभाव न होता, तो शायद वह साहित्यकार न होता2।

प्रेमचंद की दृष्टि 'प्रगतिशीलता' के संबंध में बिल्कुल साफ थी। वे 'प्रगतिशील लेखक-संघ' में 'प्रगतिशील' शब्द को निरर्थक मानते थे और उनकी यह कल्पना में भी नहीं हो सकता था कि बाद में इसके संस्थापक तथा उनकी कम्युनिस्ट पार्टी के लोग अपने राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए इस शब्द को अपना साहित्यिक हथियार बना कर भारत की विभिन्न भाषाओं के साहित्य में अपनी कम्युनिस्ट विचारधारा तथा कम्युनिस्ट पार्टी का वर्चस्व स्थापित करने का प्रयत्न करेंगे। इन राजनीतिक साहित्यकारों के लिए प्रेमचंद, टैगोर, पंत जैसे शीर्षस्थ साहित्यकार तथा पंडित जवाहरलाल नेहरू जैसे राजनेता भारतीय समाज में घुसने, फैलने तथा सम्मानीय स्थान बनाने के आधार बने, लेकिन यदि आप पूरे प्रगतिशील आंदोलन का इतिहास देखें तो आप पाएँगे कि इसमें पैदा होने वाला एक भी सहित्यकार या नेता इनकी ऊँचाई तक नहीं पहुँच सका। कोई भी छल, कपट तथा स्वार्थों की पूर्ति के लिए किसी बड़े वृक्ष, किसी बड़े व्यक्ति का सहारा तो ले सकता है, परंतु स्वयं वैसा नहीं बन सकता। प्रेमचंद के बाद डॉ. रामविलास शर्मा, अमृतराय, डॉ. नामवर सिंह आदि में, 'प्रगतिशील लेखक संघ' के उद्देश्यों, विचारधाराओं तथा क्रियाकलापों को लेकर इतना मतभेद हुआ कि सबने अपनी-अपनी दिशा बनाई और अब राजेन्द्र यादव के जनवादी मोर्चे तक आते-आते, रूस की सत्ता के समान ही यह 'प्रगतिशील लेखक-संघ' तथा कम्युनिस्ट विचारधारा भी छिन्न-भिन्न हो गई।

'मंगल सूत्र' पर अपनी बात रखने से पूर्व मुझे इस पृष्ठभूमि की जानकारी पाठकों को देना जरूरी लगा, क्योंकि 'मंगलसूत्र' पर जो तथ्य तथा विवेचन आपके सम्मुख रखूँगा, उसके लिए हिंदी साहित्य में मार्क्सवादी हस्तक्षेप के राजनीतिक चरित्र और उसके छलपूर्ण इतिहास को समझना जरूरी है। सबसे पहले प्रेमचंद उनके राजनीतिक स्वार्थों के शिकार बने। इसमें उन्हें जो सफलता मिली, वह विशेष रूप से पंडित जवाहरलाल नेहरू की रूस-चीन भक्ति तथा उनके प्रभाव में समाजवाद के दिवा-स्वप्न एवं कम्युनिस्टों को राज्याश्राय प्रदान करने की नीति प्रमुख थी। पंडित नेहरू निश्चय ही इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं थे कि ये वही कम्युनिस्ट थे, जिन्होंने स्वाधीनता संग्राम के महानायक महात्मा गांधी तथा सुभाषचंद्र बोस के लिए अपशब्दों का प्रयोग किया था तथा जो देशद्रोहिता का परिचय देते हुए अंग्रेजों का साथ दे रहे थे, लेकिन भारतीय कम्युनिष्टों के प्रति उनके मन में कुछ न कुछ कमजोरी थी, और इन कम्युनिस्टों ने भी इस दुर्बलता का भरपूर लाभ उठाया। आपातकाल के दौरान भी जब मेरे जैसे लेखक एवं अध्यापक जेल में थे, तब भी इन कम्युनिस्टों ने इंदिरा गांधी की प्रशंसा के गीत गाए। मेरा अभिप्राय यह है कि भारतीय कम्युनिस्टों का यही प्रगतिशील चरित्र रहा है कि वे राज-सत्ता तथा साहित्य के शीर्षस्थ व्यक्ति को अपना संरक्षक बनाकर उसके माध्यम से समाज में पैठ करके अपने राजनीतिक दर्शन का विस्तार करते रहे हैं। राज, सत्ता, शिक्षा, इतिहास, साहित्य आदि सभी क्षेत्र उनके क्रियाकलापों के रंगमंच रहे हैं और सर्वत्र चालाकी से भरा राजनीतिक खेल खेलते रहे हैं।

प्रेमचंद के साथ भी यही राजनीतिक खेल खेला गया और इसका आंदोलन भी स्वतन्त्रता के बाद व्यवस्थित रूप से शुरू हुआ। सन् 1947 से पूर्व, प्रेमचंद के जीवन-काल तथा उनकी मृत्यु के 10-11 वर्ष तक आपको प्रेमचंद के समीक्षा-साहित्य में प्राय: इस मार्क्सवादी हस्तक्षेप की पग ध्वनियां नहीं मिलेंगी। डॉ. रामविलास शर्मा ने सन् 1941 में 'प्रेमचंद' शीर्षक से लिखी अपनी समीक्षात्मक पुस्तक में प्रेमचंद को 'मार्क्सवादी' के स्थान पर भारतीयतावादी बताते हुए लिखा था, ''प्रेमचंद ने साहित्य की किसी हद तक वही व्याख्या की है जिसे हम भारतीय कहने के आदी हैं।'' ...प्रेमचंद के साहित्य की इस प्रकार की व्याख्या करना उन पर इस युग के, और उसकी भारतीयता के प्रभाव को बताता है। साहित्य में रस को सृष्टि, उसका ध्येय आनंद मात्र होना, प्रेमचंद की 'भारतीयता' का प्रमाण है।3 डॉ. रामविलास शर्मा ने इस पुस्तक के अंत में 'प्रगतिशील लेखक-संघ' के भाषण में 'प्रगतिशील' शब्द को तथ्यहीन बताने के प्रेमचंद के दृष्टिकोण तक का समर्थन किया और लिखा कि केवल नाम का बिल्ला लगाने से कोई प्रगतिशील या अन्य रूप से महान साहित्यिक नहीं हो जाता, प्रेमचंद के लिए साहित्य का ही अर्थ प्रगति था।4 लेकिन स्वतंत्रता के बाद मार्क्सवादी समीक्षकों ने प्रेमचंद को मार्क्सवादी लेखक सिद्ध करने का संगठित प्रयास किया और उनके कुछ लेखों 'पुराना जमाना', 'नया जमाना' तथा 'महाजनी सभ्यता', कुछ कहानियों 'पूस की रात', 'ठाकुर का कुआँ', 'सद्गति', 'कफन' आदि कुछ उपन्यासों- 'प्रेमाश्रम' में बलराज का कथन कि रूस-बलगारी देश में 'कास्तकारों का राज' है।5 'गोदान' में किसान का संघर्ष (जो उपन्यास में है ही नहीं) तथा 'मंगल-सूत्र' उपन्यास में देव कुमार का अपने 'चिर संस्कारों' (धर्म, नीत, न्यास आदि) से स्खलित होकर इस निष्कर्ष पर पहुँचना कि 'दरिंदों के बीच में, उनसे लड़ने के लिए हथियार बाँधना पड़ेगा', आदि के उल्लेख से इसे प्रमाणित करने की चेष्टा भी की, लेकिन आश्चर्य है कि किसी अन्य समीक्षक या विद्वान ने इन मार्क्सवादी समीक्षकों से यह प्रश्न नहीं किया कि इन दो-तीन प्रतिशत रचनाओं के आधार पर उन्हें कैसे इन रचनाओं में व्यक्त विचारधाराओं के आधार पर उन्हें मार्क्सवादी रचनाकार घोषित कर दिया? एक आश्चर्य और भी है कि इन मार्क्सवादियों ने प्रेमचंद द्वारा साम्यवादियों पर किए गए व्यंग्य पर भी ध्यान नहीं दिया। 'गोदान' में ही प्रेमचंद ने इन साम्यवादियों के बारे में प्रो. मेहता से कहलवाया है ''मैं केवल इतना जानता हूँ, हम या तो साम्यवादी हैं या नहीं हैं। हैं तो उसका व्यवहार करें, नहीं हैं,तो बकना छोड़ दें।.... धन को आप किसी अन्याय से बराबर फैला सकते हैं, लेकिन बुद्धि को, चरित्र और रूप को, प्रतिभा और बल को बराबर फैलाना तो आपकी शक्ति के बाहर है।.... आप रूस की मिसाल देंगे। वहाँ इसके सिवाय और क्या है कि मिल के मालिक ने राजकर्मचारी का रूप ले लिया है।6 यहाँ यह ध्यान रखने वाला तथ्य है कि मार्क्सवादी समीक्षक डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार प्रो. मेहता एवं होरी मिलकर प्रेमचंद बनते हैं। यदि प्रो. मेहता के ये विचार प्रेमचंद के ही हैं तो ये मार्क्सवादी सोचें कि वे प्रेमचंद को मार्क्सवादी सिद्ध करके कितना बड़ा साहित्यिक अपराध कर रहें हैं।

'मंगल-सूत्र' उपन्यास में भी इसी प्रकार इन समीक्षकों ने 'मार्क्सवादी मंगल-सूत्र' को आरोपित करके यह लिख दिया कि प्रेमचंद का अपने अंतिम समय में गांधीवाद से मोह-भंग हो गया था और वे मार्क्स की हिंसक क्रांति के समर्थक हो गए थे, परंतु इस निष्कर्ष की सत्यता-असत्यता को सिद्ध करने से पहले यह आवश्यक है कि हम 'मंगल-सूत्र' के उपलब्ध पाठ

की कथा-संरचना तथा पात्रों व्यक्तित्व, विचारों एवं संघर्षों के साथ लेखक के दृष्टिकोण को भी समझें। इस अधूरे उपन्यास के केवल चार परिच्छेद ही उपलब्ध हैं। इसका पहला प्रकाशन 'हंस' के फरवरी, 1948 के अंक में हुआ तथा इसके साथ ही बाद में हिंदुस्तानी पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद ने इसे पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया। उस समय यह खबर भी थी कि प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय इसे पूरा करके प्रकाशित कराएँगे, परंतु ऐसा नहीं हो पाया और अंत में प्रेमचंद की हस्तलिपि में उपलब्ध पाठ ही प्रकाशित हुआ। 'मंगल-सूत्र' के उपलब्ध चार परिच्छेदों में वर्णित कथा एवं पात्र-संरचना का अवलोकन यहाँ आवश्यक है-

(1) पहले परिच्छेद में प्रेमचंद ने साहित्यकार देव कुमार, उनकी पत्नी शैव्या, दो पुत्रों संत कुमार एवं साधु कुमार, पुत्री पंकजा का परिचय दिया है तथा उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं को उद्घाटित किया है। देव कुमार एक प्रसिद्ध साहित्यकार हैं, उनकी 'आत्मा' विशाल है, उनमें 'आत्म-सम्मान' एवं आत्म संतोष है कि उन्होंने 'कंचन' के स्थान पर 'सौंदर्य भावना' की उपासना की है क्योंकि उनका विश्वास है कि 'जिस राष्ट्र में तीन-चौथाई प्राणी भूखों मरते हों,' वहां किसी को बहुत धन कमाने का नैतिक अधिकार नहीं हैं। उन्हें साहित्य से खूब यश मिला है और इससे उनमें आत्म-गौरव का भाव है, परंतु इधर उन्हें अपनी दो पुस्तकों से पहले जैसा आदर न मिला तो उन्होंने लेखन से संन्यास ले लिया। वे गृहस्थ के बंधन से मुक्त होना चाहते थे, परंतु बड़े बेटे संत कुमार ने उन्हें दुखी किया हुआ है। वह पिता द्वारा पचास वर्ष पूर्व बेची गई सम्पत्ति को वापिस लेना चाहता है और अपनी माँ शैव्या के समझाने पर भी कहता है कि इसकी परीक्षा हो जाएगी कि पिता को अपनी 'संतान' प्यारी है या अपना 'महात्मापन'। संत कुमार ठाट से जीना चाहता है और साफ कहता है कि पिता को 'बाप-दादों की जायदाद' को लुटाने का अधिकार नहीं है। प्रेमचंद ने आरंभ में ही इसकी चर्चा की है कि देव कुमार ने अपनी जवानी में यह जायदाद 'भोग-विलास' और 'साहित्य के अनुष्ठान' में बरबाद कर दी थी।

इस प्रकार पहले परिच्छेद में ही प्रेमचंद ने उपन्यास की मूल समस्या का बीजारोपण कर दिया है। एक ओर साहित्यकार देव कुमार हैं, जिन्होंने चाहे युवावस्था में खूब भोग-विलास किया हो, लेकिन वे अब नैतिकता से परिपूर्ण जीवन जी रहे हैं। उनका बेटा संत कुमार उनके इस कंचनविहीन, संवेदनशील, स्वाभिमानी, यशपूर्ण जीवन को 'महात्मापन' कहकर उसी प्रकार आलोचना करता है, जैसे- 'गोदान' में होरी का बेटा गोबर बाप के 'धर्मात्मापन'7 को उसकी दुर्गति का कारण मानता है, लेकिन यहाँ अंतर यह है कि जहाँ होरी में परंपरागत हिंदू किसान की विवशता है, वहाँ संत कुमार अपने विलासमय जीवन के लिए शहरी शिक्षित युवक के छल और चालाकी से भरे व्यक्तित्व का परिचय देता है। प्रेमचंद इस परिच्छेद में दो विरोधी शक्तियों को परस्पर संघर्ष के लिए तैयार कर देते हैं। एक शक्ति है संतोष की, नैतिकता की, धर्म की, वचन की और दूसरी है असंतोष की, अनैतिकता की, अधर्म की, वचन-भंग की। प्रेमचंद पहली शक्ति के साथ हैं और वे जानते हैं कि दूसरी शक्ति से द्वंद्व होना ही है, चाहे वह धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, नैतिक-अनैतिकता में हो और चाहे बाप-बेटे की दो विचारधाराओं तथा जीवन दृष्टि में। संतकुमार ठीक कहता है कि उसके पिता देव कुमार को अपने 'महात्मापन' और 'संतान' में से एक को चुनना होगा। यहाँ देव कुमार का 'महात्मापन' वही है, जिसके लिए प्रेमचंद आरंभ से ही अपने साहित्य में लड़ते रहे हैं। यह उनके अनुसार 'सु' और 'कु' की लड़ाई है और 'सत्य और असत्य का संघर्ष' भी। प्रेमचंद ने मार्च 1932 को 'हंस' में अपने 'परितोष' लेख में लिखा भी था कि 'सत्य और असत्य का संघर्ष' साहित्य का मुख्य आधार है और यह तब तक रहेगा जब तक 'साहित्य की सृष्टि' होती रहेगी। यही कारण है कि 'रामायण' और 'महाभारत' काल से लेकर बीसवीं सदी तक बराबर यह संघर्ष चलता रहा है।8

(2) दूसरे परिच्छेद में प्रेमचंद संत कुमार और उसकी पत्नी पुष्पा की कथा आरंभ करते हैं। यहाँ भी संत कुमार का अहंकार कपट एवं छलपूर्ण व्यवहार, मौरूसी जायदाद को वापिस लेने का 'धर्म' तथा पत्नी को अनुकूल बनाने के लिए, 'नीति' और 'धर्म' तक के समर्थन से उसका पूर्व चरित्र ही विकसित होता है। वह चाहता है कि पत्नी अपने पिता से दस हजार रूपए ले आए, जिससे वह, 'महात्माओं' से मुकदमा लड़कर जायदाद वापिस ले सके। वह इसके लिए धर्म एवं नीति तक का समर्थन करते हुए कहता है, ''इस गए-गुज़रे जमाने में भी समाज पर धर्म और नीति का ही शासन है। जिस दिन संसार से धर्म और नीति का नाश हो जाएगा, उसी दिन समाज का अंत हो जाएगा।'' इसी परिच्छेद में साधु कुमार तथा पुष्पा की लंबी बातचीत है। वह 'आदर्शवादी, सरल प्रकृति, सुशील और सौम्य यमक है' तथा पिता का समर्थक एवं भाई की धन-लिप्सा का आलोचक है। उसे बंबई टीम के साथ खेलने जाना है, उसमें 'सैकड़ों का खर्च' है लेकिन वह पिता का 'गला दबाना' नहीं चाहता। वह कहता है, ''जिस मुल्क में दस में नौ आदमी रोटियों को तरसते हों, वहाँ दस-बीस आदमियों का क्रिकेट के व्यसन में पड़े रहना मूर्खता है।''10 वह इस कारण 'धनी' होने को 'स्वार्थंधता' मानते हुए आगे कहता है, ''मैं जब कभी धनी होने की कल्पना करता हूँ तो मुझे शंका होने लगती है कि न जाने मेरे मन का क्या हो जाए। इतने गरीबों में धनी होना मुझे तो स्वार्थांधता सी लगती है।''11 वह पुष्पा से कहता है कि वह 'सेवक' बनना चाहता है और यदि शादी की तो ऐसी लड़की से जो 'गरीबी की जिंदगी' बसर करने पर राजी होगी। इस परिच्छेद के अंत में पुष्पा भी इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि यदि वह 'विलास का मोह' त्याग दे और 'त्याग' सीख ले तो फिर वह किसी से क्यों दबेगी? पुष्पा की इस मनोवृत्ति को स्थाई बनाने के लिए प्रेमचंद ने 20-25 मजदूरनियों के दल को शाम के समय, मजदूरी करने के बाद गीत गाते हुए घर लौटते दिखाया है। प्रेमचंद इनकी दर्दनाक गरीबी, शोषण, कठोर श्रम के बावजूद यह टिप्पणी करते हैं, ''फिर भी कितनी प्रसन्न थीं। कितनी स्वतंत्र। इनकी इस प्रसन्नता का, इस स्तवंत्रता का क्या रहस्य है।''12

इस प्रकार इस परिच्छेद में भी प्रेमचंद धर्म, नीति, आदर्श, सरल, प्रकृति, सुशीलता, निर्धनता में संतोष प्रसन्नता स्वतंत्रता के मानवीय गुणों को ही महत्व देते हैं और संत कुमार, साधु कुमार तथा पुष्पा सभी को इसका समर्थक दिखाते हैं।

(3) इस परिच्छेद में संत कुमार तथा उसका सहपाठी वकील मि. सिन्हा के सहयोग से जायदाद को हथियाने के लिए मुकदमा दायर करने का निश्चय होता है। वकील साहब घाघों के भी घाघ थे और कानून की उपासना से अधिकांश भौतिक सुविधाएँ प्राप्त कर ली थीं। वकील साहब मानते हैं कि सभी लेखक 'सनकी' और 'पूरे पागल' होते हैं, अत: वे सिद्ध कर देंगे कि जायदाद

बेचते समय देव कुमार के दिमाग में खलल थी। वकील साहब संत कुमार को, जज साहब की 'अप्सरा' 'चंचल' बेटी तिब्बी (त्रिवेणी)को काबू करने के लिए प्रेरित करता है। वह तिब्बी से राह-रस्म पैदा करता है, पत्नी पुष्पा के फूहड़पन बेवकूफी, असहृदयता और निष्ठुरता की शिकायत करके उसकी हमदर्दी लेना चाहता है, परंतु तिब्बी विवाह को 'धर्म बंधन या रिवाज बंधन' नहीं 'प्रेम बंधन' के रूप में देखती है। यदि प्रेम नहीं है तो बंधन को तोड़ देना चाहिए। तिब्बी ऐसे व्यक्ति की तलाश में है जो उसके हृदय में सोये प्रेम को जगा सके। उसके जीवन का उज्ज्वल पक्ष-सुख, सुविधा, अधिकार आदि, खूब देखा है, वह अब जीवन का 'अंधेरे पहलू-त्याग, रुदन, उत्सर्ग' देखना चाहती है। वह संत कुमार से कहती है कि 'इस भोग-विलास के जीवन ने मुझे भी कर्महीन बना डाला है और मिजाज को अमीरी'। वह कहती है, ''श्रम और त्याग का जीवन ही मुझे तथ्य जान पड़ता है। आज तो समाज और देश की दूषित अवस्था है, उससे असहयोग करना मेरे लिए जूनून से कम नहीं है। मैं कभी-कभी अपने ही से घृणा करने लगती हूँ। बाबूजी का एक हजार रुपए अपने छोटे से परिवार के लिए लेने का क्या हक है और मुझे बे-काम धंधे इतने आराम से रहने का क्या अधिकार है ?''13। लेखक कहता है कि इन कथनों में तिब्बी की 'आत्मा' बोल रही थी, लेकिन वह संत कुमार के छलपूर्ण व्यवहार से इतनी प्रभावित हो जाती है कि वह पुष्पा को दोषी तथा संत कुमार को 'सत्य पुरुष' तथा 'देवत्व' से परिपूर्ण मानने लगती है। प्रेमचंद ने तिब्बी की विचार-दृष्टि में जो यह परिवर्तन किया है, वह भावी कथा के विकास के लिए है, क्योंकि संत कुमार जायदाद के लिए मुकदमा दायर करेगा और जज की बेटी तिब्बी उसकी किसी न किसी रूप में मदद करेगी।

इस परिच्छेद में भी प्रेमचंद ने त्याग, उत्सर्ग, श्रम, अमीरी की अमानवीयता तथा गरीबी की कर्मशीलता एवं मनवीयता की ही स्थापना की है। तिब्बी में अमीरी से घृणा तथा गरीबी को अपनाने का विचार उत्पन्न करके प्रेमचंद अपने मूल उद्देश्य 'धन से दुश्मनी' को ही स्थापित कर रहे हैं।

(4) इस परिच्छेद में देव कुमार की चिंतन-धारा के परिवर्तन से कथा का विकास होता है। संत कुमार और उसका वकील मित्र, देव कुमार के सामने जायदाद वापिस लेने की 'कुटिल चाल' रखते हैं,परंतु वे अपनी 'आत्मा को कलुषित' नहीं करना चाहते थे। वे अपनी 'मर्यादा', 'सिद्धांत', 'धर्म बंधन' तथा 'सत्य' के मार्ग को छोड़ना नहीं चाहते। वे कहते भी हैं, ''मैं सत्य की हत्या होते नहीं देख सकता। मैं थोड़े से रुपये के लिए अपनी आत्मा नहीं बेच सकता।''14 वह कहते हैं कि उन्होंने सोच-समझकर जायदाद बेची थी उनका बेटा संत कुमार जब उन्हें 'पागल' घोषित करने तथा 'हिरासत' में भेज देने की धमकी देता है तो वह बेटे को 'गोली मार' देने की धमकी देता है। उनका निश्चय था कि वे असत्य का, धांधली का, सिद्धांत को तोड़कर व्यावहारिकता का सहारा नहीं लेंगे। वह संत कुमार की 'दगाबाजी तथा उसके 'कलंक' एवं समाज में उसकी 'चितकबरी आलोचना' से इतने दु:खी हुए कि घर में ही, 'मुँह छिपाए' बैठे रहते हैं। छोटे बेटे साधु ने जब गंगा में डूबते आदमी को बचाया तो उन्हें अपने 'प्राप्त यश' की खुशी के समान ही खुशी हुई, अर्थात् छल, कपट, झूठ के स्थान पर सेवा, बलिदान आदि से उनकी आत्मा आनंद का अनुभव करती थी।

प्रेमचंद अपने चरित्रों को सजीव तथा मनुष्य बनाने के लिए उनमें मानवीय दुर्बलताओं की उद्भावना करते हैं इससे वे कथा तथा चरित्र का विकास करते हैं।'साहित्य का उद्देश्य' पुस्तक में संकलित लेख 'उपन्यास'15 में उन्होंने इसी महत्वपूर्ण लक्ष्य के बारे में लिखा है, ''चरित्र को उत्कृष्ट और आदर्श बनाने के लिए यह जरूरी नहीं है कि वह निर्दोष हो-महान से महान पुरुषों में भी कुछ न कुछ कमजोरियां होती हैं। चरित्र को सजीव बनाने के लिए उसकी कमजोरियों का दिग्दर्शन कराने से कोई हानि नहीं होती, बल्कि यही कमजोरियां उस चरित्र को मनुष्य बनाती हैं। निर्दोष चरित्र तो देवता हो जाएगा और हम उसे समझ ही न सकेंगे।''16 प्रेमचंद के उपन्यास और कहानियों के असंख्य पात्रों में, इसी कारण, दुर्बलताओं से युक्त देवता-मनुष्यों के दर्शन होते हैं। प्रेमचंद अपने नायकों, नायिकाओं में मानवीय दुर्बलताओं का दिग्दर्शन कराते हैं, परंतु वे उन्हें कालिमा से 'उज्ज्वलता' की ओर भी उन्मुख करते हैं। 'मंगल-सूत्र' में, अपने इसी सृजन सिद्धांत के अनुसार, वे देव कुमार जैसे सत्य, न्याय, धर्म पर चलने वाले साहित्यकार में भी मानवीय कमजोरियों का उद्भव करते हैं। देव कुमार पहली बार ऐसे 'आत्म-मंथन' से गुजरता है कि इस 'अनीतिपूर्ण संसार में धर्म-अधर्म का विचार गलत है, 'देवता बनना मूर्खता है। धनी कुछ भी कर सकता है, निर्धन को सभी दबाते हैं। वह 'पितरों को पिंड-दान' देने, रात में मित्रों के साथ 'मुजरा' सुनने तथा नाटक-मंडली में हजारों रुपयों को डुबाने को 'पागलपन' मानते हुए सोचता है कि 'मनुष्य' में मनुष्य बनना पड़ेगा।' दरिंदों के बीच में, उनसे लड़ने के लिए हथियार बांधना पड़ेगा। उनके पंजों का शिकार बनना देवतापन नहीं, जड़ता है।''17 इस निष्कर्ष पर पहुंचकर देव कुमार के, लेखक के अनुसार, 'चिर-संस्कारों' को आघात लगा, परंतु वे प्रसन्न थे जैसे- उन्हें, कोई नया मंत्र मिल गया हो। इसके बाद वे सेठ गिरधरदास के पास पहुंचकर पुरानी जायदाद को वापिस लेने के बेटे के प्रयास पर बातचीत करते हुए झगड़ पड़ते हैं। गिरधरदास समझाने का प्रयत्न करता है कि जो चीज बिक जाती है, बिक जाती है, वह कानूनन किसी दाम पर भी वापस नहीं हो सकती। प्रेमचंद यहां गिरधर के साथ देव कुमार को भी 'लड़ने वाले कुत्तों' के रूप में देखते हैं। घर लौटकर देव कुमार बेटे संत और वकील सिन्हा को मुकदमा दायर करने की सहर्ष अनुमति दे देता है लेकिन इसके लिए धन की आवश्यकता थी। देव कुमार ने जीवन-पर्यन्त धन की उपासन नहीं की थी लेकिन अब अपने प्रेमियों और भक्तों से खुले शब्दों में आर्थिक सहायता की याचना कर रहे थे। प्रेमचंद पुन: इस पतन पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि वह 'आत्म-गौरव' जैसे 'कब्र' मे सो गया हो। इस पर उनके भक्तों ने साठवीं सालगिरह पर एक थैली भेंट करने का निर्णय किया । यहां प्रेमचंद ने फिर उनकी पतितावस्था तथा द्वंद्व का चित्रण किया है। कार्यक्रम में जाने से पूर्व देव कुमार के मन में उल्लास नहीं 'अवसाद' है, धन का दान लेते समय 'लज्जा' का भाव है, 'आत्म-सम्मान' विद्रोही है। लेखक लिखता है ''नैकनामी की लालसा एक ओर खींचती थी, लोभ दूसरी ओर।''18 उनकी लोभ-वृत्ति अपने नीति-कौशल से इस दान को 'प्राविडेंट फंड' तथा 'पेंशन' मानकर उन्हें समझा लेती है और उनके 'पोले मुख' पर हल्की-सी सुर्खी दौड़ जाती है। प्रेमचंद देव कुमार के इस गर्व, हर्ष तथा विजय में पतन की विजय का ही संकेत देते हैं।

'मंगल-सूत्र' के नायक और प्रख्यात साहित्यकार देव कुमार का यह पतन, दृष्टि में परिवर्तन, क्या मार्क्सवादियों का 'मंगल-सूत्र' है अथवा प्रेमचंद

जिस 'मंगल-सूत्र' की तलाश में हैं, उस तक पहुंचने के लिए, 'देवता' को मनुष्य बनाया गया है ? अधूरे उपन्यास के अंत में देव कुमार की यह 'विजय' क्या उसे वास्तव में बड़ा बनाती है, अथवा कथा और चरित्र के विकास के लिए एक मोड़ के रूप में चित्रित की गई है ? प्रेमचंद की दृष्टि बिल्कुल साफ है। उन्होंने अपने लेख 'उपन्यास' में लिखा है कि भावी उपन्यास जीवन-चरित्र होगा, चाहे किसी बड़े आदमी का या छोटे आदमी का। उसकी छुटाई-बड़ाई का फैसला उन कठिनाइयों से किया जाएगा कि जिन पर उसने विजय पाई है।19 'मंगल-सूत्र' के 'प्रेमचंदीय मंगल-सूत्र' को समझने के लिए उनका यह कथन अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस कथन के कारण तथा

कथानायक के साहित्यकार होने के कारण इस उपन्यास को समीक्षकों ने 'आत्मकथा मूलक' माना है। प्रेमचंद की 'जीवन-चरित्र' की धारणा भी इसी मत को पुष्ट करती है। यह पहला उपन्यास है जिसमें उन्होंने साहित्यकार के रूप में स्वयं को केंद्र में रखा है, लेकिन यहां प्रश्न यह है कि देव कुमार की यह 'विजय' है या कुछ और। प्रेमचंद के अनुसार यह विजय नहीं है, मनुष्य का कमजोरियों में गिरना है। यह देव कुमार की पराजय है, क्योंकि वह मनुष्य की दुर्बलताओं के सम्मुख नतमस्तक होता है। यह उसका वैचारिक एवं चारित्रिक पतन है, साठ वर्ष की सत्य, न्याय सेवा, धर्म आदि की उपलब्धियां धन के लालच और चाटुकारिता में बदल जाती है। लोभ-प्रवृत्ति उनके आत्म-गौरव, आत्म-सम्मान, नीति एवं सत्य-पोषण के गुणों को नष्ट करके उन्हें सभी मानवीय मूल्यों से शून्य बना देती है। देव कुमार का यह पतन कथा के विकास के लिए जरूरी है, लेकिन यदि उपन्यास पूरा हो सका होता तो प्रेमचंद निश्चय ही, अपनी सृजन-प्रवृत्ति की परंपरा के अनुसार उन्हें इस कीचड़ से निकालकर उनका परिष्कार करते और वास्तविक 'मंगल-सूत्र' को पाठकों को समर्पित करते ।

प्रेमचंद के इस अभिप्रेत 'मंगल-सूत्र' के प्रमाण के लिए एक अत्यंत प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध है। प्रेमचंद के बड़े पुत्र श्रीपतराय ने मन्मथनाथ गुप्त को 18 मई, 1950 को लिखे पत्र में इसी सूत्र का उद्घाटन करते हुए लिखा था, ''उन्होंने अपने अंतिम दिनों में अपने अंतिम और असमाप्त उपन्यास की आलोचना मेरे साथ की थी'' वे 'गोदान' की तरह इसे बहुत-कुछ आत्मकथामूलक बनाना चाहते थे, पर 'गोदान' में जहाँ वातावरण दूसरा है, इसमें वह शहरात होता। इसमें वे अपने मानदंडों के अनुसार यह दिखाना चाहते थे कि सफलता के लिए चालाकी (छ्हड्डुद्धह्ल) अनिवार्य रूप से आवश्यक नहीं हैं। वे इस उपन्यास में यह दिखाना चाहते थे कि एक ईमानदार, परिश्रमी और सीधा-सादा आदमी ऐसी सफलता प्राप्त कर सकता है, जिसे देखकर लोग ईर्ष्या करें और यह जगह सुरुचिपूर्ण मान्यताओं के संपूर्ण विरुद्ध नहीं है। मेरा ऐसा विश्वास है कि ये ऐसा समझते थे कि उन्हें अपने जीवन में सफलता प्राप्त हुई है, और ऐसा वे उचित कारणों से समझते थे, ऐसा मेरा अनुमान है। उनका जीवन ईमानदारी का एक मूर्त रूप था, जिसे युगों तक लोग याद करेंगे। इसे सभी मानते हैं और एक जीवन के लिए उन्होंने बहुत कुछ किया, यह भी नि:संदेह है।20

प्रेमचंद-समीक्षा का इतिहास बताता है कि मार्क्सवादी समीक्षक मन्मथनाथ गुप्त तथा प्रेमचंद के बड़े पुत्र श्रीपतराय के इस साक्ष्य और प्रमाण को भी 'प्रगतिशील' समीक्षकों ने बिल्कुल महत्व नहीं दिया और इन वस्तुवादियों ने इस प्रमाण की उपेक्षा कर दी। इसकी उपेक्षा उनके हित में थी। आश्चर्य तब होता है, जब इन प्रगतिशील समीक्षकों, शोधकर्ताओं ने 'प्रगतिशील लेखक संघ' में दिए भाषण तक की उपेक्षा कर दी। ये बस इसमें प्रसन्न रहे कि प्रेमचंद ने 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना की (कुछ को तो यह भी ज्ञात नहीं है कि वे इसके संस्थापक नहीं थे) तथा इसकी अध्यक्षता की। इस भाषण को यदि इन प्रगतिशील विद्वानों ने पूरा पढ़ लिया होता तो वे कुछ तो उनकी भारतीयता को समझते। इस भाषण में वे कहते हैं कि 'नीति-शास्त्र ' और 'साहित्य-शास्त्र' एक हैं। उसका लक्ष्य है- सुरुचि जगाना, आध्यात्मिक-मानसिक तृप्ति देना, शक्ति और गति उत्पन्न करना, कठिनाइयों पर विजय पाने के लिए सच्चा संकल्प एवं दृढ़ता तथा सच्चाई, सहानुभूति, न्यायप्रियता, आध्यात्मिक सामंजस्य आदि भावों को पुष्ट करना, मन का संस्कार करना धन-वैभव से मुक्ति एवं सेवा-उपासना की सार्थकता, सादा जीवन तथा ऊंची निगाह एवं स्वार्थमयता से मुक्ति।21 यह संपूर्ण शब्दावली तथा विचार-सूत्र 'प्रगतिशील लेखक संघ' के अधिवेशन में दिए व्याख्यान के ही हैं। कोई भी मार्क्सवादी लेखक-समीक्षक बताए कि क्या वे इसमें 'मार्क्सवादी मंगल-सूत्र' देखते हैं या 'भारतीय मंगल-सूत्र' और क्या वे इस भाषण के गुणों से युक्त देवकुमार को मार्क्सवादी मानते हैं या पतनशील देव कुमार को ? प्रेमचंद अपने भाषण में शुद्ध भारतीय हैं, भारतीयता के तत्वों को लेते हैं और कहीं भी मार्क्स की शब्दावली का उपयोग नहीं करते । देव कुमार एक साहित्यकार है, अत: प्रेमचंद के विचार में उसे आदर्शवादी ही होना है। प्रेमचंद ने अप्रैल, 1932 में 'हंस' में लिखा था, ''साहित्यकार को आदर्शवादी होना चाहिए। भावों का परिमार्जन भी उतना ही वांछनीय है। जब तक हमारे साहित्य-सेवी इस आदर्श तक न पहुंचेंगे तब तक हमारे साहित्य में मंगल की आशा नहीं की जा सकती।''22 प्रेमचंद इसी 'मंगल' के लिए 'मंगल-सूत्र की तलाश करते हैं।' 'मंगल-सूत्र' पूरा होता तो देव कुमार अपनी दुर्बलता को जीत कर इसी मंगल-सूत्र का पर्याय होता। जहां तक देव कुमार के दरिंदों से लड़ने का प्रश्न है, क्यों इसे मार्क्स की खूनी क्रांति से जोड़ा जाए ? मेरे विचार से इसे अधर्म से युद्ध करने की भारतीय परंपरा में देखा जाए ? भगवान कृष्ण अधर्म से लड़ने के लिए अर्जुन को पलायन से मुक्तकर युद्ध के लिए तत्पर करते हैं। चाणक्य अपने शत्रुओं का समूल नाश करता है। गोस्वामी तुलसीदास आसुरी प्रतृत्तियों से युद्ध करने के लिए राम के हाथ में धनुष-वाण देते हैं। अत: देव कुमार यदि दरिंदों (मानवता के शत्रुओं) से लड़ने के लिए हथियार बांधने के लिए कहता है तो वह इसी जातीय परंपरा का अनुसरण करता है। अंतर केवल यह है कि देव कुमार सत्य, नीति, त्याग, धर्म के स्थान पर अपने स्वार्थ के लिए हथियार उठाना चाहता है। प्रेमचंद इसे भली-भांति जानते हैं, इसलिए वे इसे केवल एक उक्ति के रूप में ही इस्तेमाल करते हैं।

भारतीय चिंतन तथा जीवन-दृष्टि 'अनीति' 'अधर्म' एवं 'असत्य' के विरुद्ध धर्म-युद्ध का आह्वान करती है, लेकिन देव कुमार का युद्ध स्वयं उसकी अनीति और दुर्बलताओं की उपज है। वह वेश्याओं के मुजरे में धन कमाता है, पितरों के पिंड-दान में पंडितों का घर भरता है और साहित्यिक संतुष्टि तथा यश के लिए नाटक-मंडलियों पर धन लुटाता है और इसी आर्थिक दबाव में अपनी जायदाद बेचता है। इस बेची जायदाद तो वापस लेने की कानूनी लड़ाई का कोई नीतिगत आधार नहीं है। भारतेंदु हरिश्चंद्र तथा जयशंकर

प्रसाद ने अपनी धन-संपत्ति का बहुत बड़ा हिस्सा इसी प्रकार लुटा दिया था, इसे सारा हिंदी संसार जानता है, परंतु वे इतने मूर्ख नहीं थे कि भोग-विलास-यश के लिए बेची गई संपत्ति को वापस लेने के लिए कानूनी लड़ाई शुरू करें और यह कहें कि संपत्ति को वापस लेने के लिए हथियार उठाने होंगे। इस युद्ध की नैतिकता तब थी जब क्रेता ने देव कुमार से छल, कपट और आंखों में धूल झोंककर या बेचने के समय के दामों से, अपनी चालाकी या धूर्तता से बहुत कम कीमत दी हो। यह भी ध्यातव्य है कि संपत्ति पचास पूर्व बेची गई थी, अर्थात,सन 1886 में ('मंगल-सूत्र' की रचना के 50 वर्ष पूर्व) वह जायदाद लेखक के अनुसार दस हजार में तथा संत कुमार के अनुसार 'बीस हजार' में बेची गई। मैं संत कुमार के उल्लेख को सच मानता हूँ, क्योंकि वहीं व्यक्ति जिसने जायदाद को वापस लेने का युद्ध शुरू किया है। उस समय यह जायदाद 'बीस हजार' की थी, 'मंगल-सूत्र' के रचना-काल में वह 'दो लाख' की हो गई और यदि वह सन् 2010 में बेची जाती तो वह 10-20 करोड़ की होती। इस प्रकार यदि संत कुमार तथा देव कुमार के तर्कों को माना जाए तो 30-40 वर्ष पूर्व बेची गई संपत्तियां भी आज के वारिसों को वापस ले लेनी चाहिऐ और यदि यह संभव हो सके तो इन वारिसों के पूर्वजों ने जिन लोगों से जायदाद और जमीन खरीदी थी, उनके वारिस भी उनसे ऐसी सभी जायदाद को वापस लेने का कानूनी अधिकार क्यों छोड़ना चाहेंगे? 'अर्थ यह है कि संत कुमार की कानूनी लड़ाई हास्यास्पद है, देश के कानूनों के विरुद्ध है, क्रेता-विक्रेता के सिद्धांतों के विरुद्ध है, अत: जब देव कुमार जैसा साहित्यकार जो नीति, सत्य और धर्म पर चलता रहा है, अपने बेटे संत कुमार की मूर्खतापूर्ण कानूनदाव-पेंच का समर्थन करता है तो क्या ये मार्क्सवादी समीक्षक ये समझते हैं कि प्रेमचंद इन मूर्खताओं के समर्थक बन जाते हैं? प्रेमचंद का कितना ही गांधीवाद से मोह-भंग हुआ होता, (जो कि वास्तव में हुआ नहीं था) तब भी वे इस अनीति, असत्य तथा धूर्तता का साथ नहीं दे सकते थे। मार्क्सवादी लेखक प्रेमचंद को 'गांधीवाद' से मोह-भंग के नाम पर, उन्हें मार्क्सवादी बनाने तथा प्रमाणित करने के राजनीतिक षड्यंत्र के लिए उन्हें इतना नीचे गिरा सकते हैं, यह कोई सोच भी नहीं सकता था। प्रेमचंद का स्वयं का जीवन देव कुमार जैसा ही था। उन्हें नीति, सत्य, धर्म, प्यारा था। उन्हें कई व्यक्तियों ने आर्थिक दृष्टि से लूटा भी, लेकिन उन्होंने देव कुमार के समान न तो अपने पुत्र की 'कुटिल चालों' का समर्थन किया और न स्वयं ही ऐसी चालों से धन कमाया। हमारे मार्क्सवादी देव कुमार की एक उक्ति को ले उड़े हैं। वे उसके पूर्व के व्यक्तित्व को नहीं देखते और न बाद के परिवर्तित रूप को और न उन कारणों को ही देखा जिसके कारण देव कुमार अपने बेटे संत कुमार से कानूनी लड़ाई शुरू करने के लिए कहता है। मार्क्सवादियों को पूरे प्रेमचंद साहित्य में ऐसी ही पांच-छ: उक्तियां मिलती हैं, लेकिन इनसे वे 8-10 हजार पृष्ठों को लिखने वाले प्रेमचंद को परिभाषित कर हिंदी-संसार को दिग्भ्रमित करते रहे हैं। ये मार्क्सवादी यही लिखते रहे हैं कि इन 6-7 रचनाओं में ही वास्तविक, विकसित और स्थाई प्रेमचंद हैं, शेष साहित्य कल्पना, आदर्श और गांधीवाद पर आधारित है जो उनकी अविकसित तथा मोह-भंग का प्रतीक है। ये समीक्षक इन रचनाओं को यथार्थवाद से भी जोड़ कर उनकी कलात्मक श्रेष्ठता की भी स्थापना करते हैं, जैसे मार्क्स. के आने से पूर्व साहित्य में 'यथार्थवाद' था ही नहीं। प्रेमचंद ने जो यथार्थवाद तथा आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की चर्चा की है, उसे भी ये मार्क्सवादी स्वीकार नहीं करते, क्योंकि प्रेमचंद का आदर्शवाद तथा ऐसा यथार्थवाद जो आदर्श की ओर उन्मुख हो, उनके मार्क्सवादी चिंतन में नहीं आता। ये समीक्षक प्रेमचंद को भी उनके साहित्यिक सिद्धांतों तथा साहित्य-चिंतन से साथ ग्रहण नहीं करते, क्योंकि उनके सिद्धांत भी मोहग्रस्ता के परिणाम हैं, ऐसा ये मानते हैं।

अंत में, प्रेमचंद के अधूरे उपन्यास 'मंगल-सूत्र' के पाठ से तथा प्रेमचंद की पूर्व मान्यताओं के आधार पर इसके अधूरेपन को पढ़कर इसके पूवर्णरूप के प्रतिपाद्य को सरलता से समझा जा सकता है। प्रेमचंद का अपना जीवन साहित्यकार के लिए उनके आदर्श तथा श्रीपतराय का साक्ष्य, 'मंगल-सूत्र' के 'प्रेमचंदीय मंगल-सूत्र' को स्पष्टता से समझा जा सकता है। यह 'मंगल-सूत्र' भारतीय आदर्शों पर टिका है, भारतीयता पर टिका है। देव कुमार अपने जीवन के गुणों तथा उपलब्धियों से 'मंगल-सूत्र' प्रस्तुत करेगा। उसकी पतनशील विचारधारा उसकी परीक्षा के लिए है और उसे 'मनुष्य' बनाने क लिए है। प्रेमचंद अपने नायक को परीक्षा में डालते हैं, पतनशील मनोवृत्ति उत्पन्न करते हैं और धीरे-धीरे उसे कीचड़ में कमल की तरह खिलाकर उसका परिष्कार करते हैं। देव कुमार एक बार कीचड़ में फंसता है, दलदल में गिर जाता है, परंतु उसे कमल की तरह खिलकर मनुष्य जीवन के लिए 'मंगल-सूत्र' का मंत्र देना है।'मंगल-सूत्र' नीति का होगा, सत्य का होगा, धर्म का होगा और यह देव कुमार का ही नहीं, प्रेमचंद का भी होगा, पूरे समाज का होगा। मेरा और आप सबका होगा, संपूर्ण भारतीयता का होगा।

संदर्भ

1. 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य', खंड-2 संपादक-कमल किशोर गोयनका, पृष्ठ 122-123
2. 'साहित्य का उद्देश्य' पृष्ठ 16-17
3. 'प्रेमचंद' रामविलास शर्मा, प्रथम संस्करण, अप्रैल, 1941, सरस्वती प्रेस, बनारस कैंट-1 पृष्ट 1 तथा 11
4. वही, पृष्ठ 182
5. 'प्रेमचंद', पृष्ठ 51-52
6. 'गोदान', पृष्ठ 45-47
7. 'गोदान' पृष्ठ 21
8. 'प्रेमचंद के विचार', खंड 2, पृष्ठ 122
9. 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य, 'खंड-एक, पृष्ठ 30 संपादक-कमल किशोर गोयनका
10. वही, पृष्ठ 31
11. वही, पृष्ठ 32
12. वही, पृष्ठ 34
13. 'मंगल-सूत्र' पृष्ठ 42 संकलित 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य', खंड - एक
14. 'मंगल-सूत्र', प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य, खंड एक संपादक, कमल किशोर गोयनका, पृष्ठ 45-46
15. 'साहित्य का उद्देश्य', पृष्ठ 60-72
16. वही, पृष्ठ 63
17. 'मंगल-सूत्र' से प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य, खंड एक, पृष्ठ 51
18. 'मंगल-सूत्र', प्रेमचंद का अर्प्राप्य साहित्य, खंड-एक, पृष्ठ 56
19. 'साहित्य का उद्देश्य' पृष्ठ 80
20. 'प्रेमचंद : व्यक्ति और साहित्यकार', पृष्ठ 357
21. 'साहित्य का उद्देश्य', पृष्ठ 12-26
22. 'साहित्य का उद्देश्य', पृष्ठ 35

संपर्क : ए-98, अशोक बिहार, फेज प्रथम, दिल्ली - 110052

■

पुस्तक समीक्षा

लोक और शास्त्र का अद्भुत समन्वय: गाँव-गाँव गोरख नगर-नगर नाथ

डॉ. विभा सिंह

साधना भारतीय संस्कृति में साधक को सिद्ध बनाने वाली मानी जाती है और 'नाथ' सिद्ध के पर्याय भी हैं और विशेष उपलब्धि के सूचक भी। गोरखनाथ का आविर्भाव जिस काल में हुआ था वह समय भारतीय साधना में बड़े उथल-पुथल का है। भारतीय दंतकथाओं में गुरूगोरखनाथ सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान माने गये हैं। शिव नाथपंथ के आराध्य देव हैं और कभी-कभी तो इन्हें शिव के समतुल्य भी बताया गया है। यह बड़े दु:ख की बात है कि जिस गोरखनाथ का भारत के धार्मिक इतिहास में इतना बड़ा महत्त्व है उनके विषय में प्रमाणिक अन्वेषण का आभाव रहा।

डॉ. श्री कृष्ण 'जुगनू' द्वारा लिखित 'गाँव-गाँव गोरख नगर-नगर नाथ (आर्यावर्त संस्कृति संस्थान द्वारा प्रकाशित) पुस्तक इस कमी को पूरी करती दिखाई पड़ती है। इस पुस्तक में नाथपंथ/गोरखनाथ से जुड़े अनेक पक्ष को सप्रमाण संजोने का प्रयास किया गया है। यह पुस्तक जितना शास्त्रीय आधार लिए हुए है, उतना ही लोकपक्ष को भी लेकर चली है। अपने देश-विदेश की अनेक यात्राओं के पश्चात् 'जुगनू' जी लिखते हैं ''मैंने अपने.... यात्राओं के दौरान यह सर्वत्र पाया कि इस वृहद् परिदृश्य में लोकचेतना जिन तत्त्वों को स्वीकृत किए है, वे लगभग समानस्तरीय है और उनमें औपनिशदिक प्रवाह है। लोक इसका बड़ा हेतु भी है तो सेतु भी। इस वृहद् क्षेत्र में शास्त्र लोक से पूरी तरह प्रभावित है और लोक चेतना ही शास्त्रीय स्थापनाओं के लिए आधार का काम करती रही है।'' (पृष्ठ VII) गोरख सम्प्रदाय की अनुश्रुतियाँ, कबीर पन्थ के ग्रन्थ, धर्मपूजा-विधान साहित्य यद्यपि रचनाकाल की दृष्टि से बहुत अर्वाचीन हैं तथापि वे अनेक पुरानी परम्पराओं के अवशेष है। समूची भारतीय संस्कृति के अध्ययन के लिए इनकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। लोकभाषाओं का साहित्य हमें अनेक अधभूली, भूली और उलझी हुइ परम्पराओं को समझने में अमूल्य सहायता पहुँचाता है। लोककथा, मूर्ति और मंदिर साधुओं के विशेष-विशेष सम्प्रदाय, उनकी रीति-नीति, आचार-विचार पूजा-अनुष्ठान आदि की जानकारी परम्आवश्यक है। क्योंकि इन लोक कथाओं और अनुष्ठानों के भीतर से अनेक सम्प्रदायों की विशेषता का तो पता चलता ही है साथ ही कभी-कभी इनके द्वारा उन पूर्ववर्ती मतों का भी पता चल जाता है जो या तो इन परवर्ती मतों के विरोधी थे या इन्हीं में घुल-मिल गये हैं। अत: इन्हें समझने के लिए केवल लिखित-साहित्य ही नहीं लोक कथाओं-अनुष्ठानों को जानना समझना भी जरूरी है।

गहन शास्त्रीय अध्ययन एवं लोकजन श्रुतियों के गुणन-मनन के बाद 'जुगनू' जी का आग्रह है कि -''यायावर मित्रावरूण और उर्वशी से अगस्त्य की उत्पत्ति कलश में रखकर नदी में प्रवाह, कुमार अगस्त्य की खोज, धुमक्कड़वृत्ति से देशाटन, तन्त्र-मन्त्र से लेकर लोकोपचार, विन्ध्याचल को बढ़ते हुए रोकना, बादामी में वातापी राक्षस का वध, आगे बढ़कर समुद्र का आचमन करना और पुन: उत्सर्जन कर जीवों को जीवन देने जैसे प्रसंगो के प्रकारान्तर और समयान्तर से नाथों के साथ जुड़ते हुए भी देखना चाहिए।'' (पृष्ठ VIII) नाथ साहित्य लोक-भावना एवं समष्टिगत चिंतन को उकेरता एक सार्थक उपलब्धि है। सिद्धिदायी, सिद्धसेवित योगोपदेश संयम और सदाचार पर आधारित नियम गोरखनाथ जी के प्रमुख सन्देश रहे हैं। योगसाधना में सात्त्विकता और नैतिकता में समावेश के साथ ही लोकजीवन में संयम और सदाचार की स्थापना करना भी उनके लोकमंगलकारी चरित्र और चिन्तन का श्रेयस्कर प्रयोजन था। इसके लिए नाथों ने अपने उपदेश और रचना के लिए जिन भाषाओं को स्वीकारा वह लोक और श्लोक दोनों दृष्टि से महत्त्व रखती है।'' (पुस्तक के कवर पेज से)

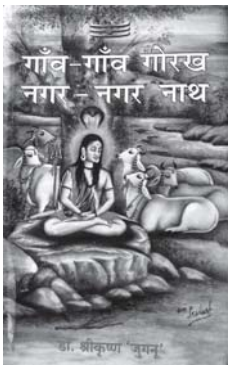

गोरखनाथ की रचना के रूप में संस्कृत तथा हिन्दी में कई रचनाएँ उपलब्ध है। उनकी बहुत सी रचनाओं का उल्लेख ब्रिग्स, फुर्कहर, आफ्रेक्ट, प्रबोधचन्द बागची, कल्याणी मल्लिक पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, धर्मवीर भारती, रांगेय राघव जैसे विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में किया हैं और सभी अपनी विशिष्ट स्थापनाओं के लिए चर्चित रहे हैं। परन्तु प्रस्तुत पुस्तक में शास्त्र और लोक का ऐसा गुम्फन है जो चकित करने वाला है- ''गर्ग और नारदादि के नाम से जिस तरह शास्त्रसृजन की परम्पराएँ रहीं, वैसी ही तन्त्रादि में गोरखनाथ की परम्पराएँ सामने आयीं। स्कन्द और शिवादि पुराणों में भी यह प्रभाव दृष्टव्य है। लोकाञ्चल में गोरख की छाप से भजनों, पदों और जाप-शब्दों की प्राप्ति एक अनूठा पक्ष है तो साबर मंत्रों का हर क्षेत्र में मिलना गोरख के गौरव दृष्टि कही जाएगी।'' (पृष्ठ IX) शास्त्रों के तमाम निदेर्शों के विद्यमान होने के बावजूद लोकजीवन नाथमत से अतिशय रूप से प्रभावित है और हर कहीं उस प्रभाव की पताका फहराती दिखाई देती है। इसलिए कहा गया है- ''**नाथ परतरां मन्त्रो नाथ परतरं तप:। तृषायन्ते मन्त्रीसिद्धादय: सर्वा यदग्रत:।।** अर्थात् नाथ से बढ़कर कोई मंत्र नहीं, नाथ से बढ़कर कोई तप नहीं, इसके आगे सभी मांत्रिक और सिद्ध आदि तृणवत् होते हैं।'' (पृष्ठ VIII) यही नहीं लोक जीवन में -''जिस तरह नारी जीवन में पारिवारिक आयोजनों को लेकर लोकगीतों का महत्त्व है वैसे ही नाथ-पुरूषों में जाप शब्द प्रचालित रहे हैं।''(पृष्ठ X) यहाँ तक कि-'' गोरखनाथ के उपदेश से प्रभावित होकर एक कुख्यात तस्कर भी साधु बन गया और उसने अपना निरंजनी नामक पंथ चलाया।'' (पृष्ठ-168)

यह धारा इतनी सामाजिक और प्रासांगिक रही है कि उसका प्रभाव आज तक देखा जा सकता है। संयमपूर्वक रहने से सांसारिक मानव के दु:ख दर्द

दूर हो जाते हैं। यह बात आज योगासनों के बढ़ते प्रचार से स्पष्ट हैं। जुगनू जी लिखते हैं- ''आज यदि योग की ओर सम्पूर्ण विश्व आशा भरी निगाहों से देख रहा है तो इसे गोरखादि नाथों की कालजयी दूरदृष्टि के रूप में भी स्वीकार करना चाहिए- ते जोगी ततसार।'' (पृष्ठ IX) नाथों ने योग की महत्ता को मानकर माया छोड़ काया को सुधारने की दृष्टि दी। अनेक मतों के लिए नाथों के मतों को प्रमाण के रूप में उद्धत करने की सुदृढ़ परम्परा रही हैं जिसमें वैष्णम मत के प्रचारक महाकवि सूरदास और रामचरितकार गोस्वामी तुलसीदास ने गोरख आदि का स्मरण किया है तो सूफीमत के जायसी ने भी अपनी प्रसिद्ध रचना 'पद्मावत' में राजा रत्नसेन पर गोरखनाथ की कृपा को स्वीकार किया है। कबीर पर पड़े प्रभाव तो यत्र-तत्र-सर्वत्र दिखाई पड़ते ही हैं।

गोरखनाथ के दार्शनिक तथा व्यवहारिक क्रान्ति की अखिल भारतीय व्याप्ति ने समकालीन प्रचलित अनेक पंथों, वैचारिक पद्धत्तियों को सिद्धमत, सिद्ध मार्ग, योग मार्ग, योग पंथ, अवधूत मत, गोरखनाथी आदि अनेक मत और मार्ग नाथपंथ 'मार्ग' में सम्मिलित होकर एक नवीन मार्ग प्रशस्त किया जो नाथपंथ के नाम से प्रसिद्ध है। नाथपंथ से सम्बंधित साहित्य में नाथपंथ के लिए -कनफटा, योगी दर्शनि, गोरखनाथी आदि अभिधान प्राप्त होता है। परन्तु जुगनू जी ने इसे 'नाथधारा' नाम से स्वीकारा है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में शैलीगत प्रवृत्तियों के आधार पर जिस सिद्धोत्तर नाथों के युग को राहुल जी, वर्मा जी अथवा रामचन्द्र शुक्ल जी ने आदिकाल या सिद्ध सामन्तकाल के अन्तर्गत रखा और डॉ. नगेन्द्र आदि ने नामकरण की समस्या को रेखांकित किया उसके लिए जुगनू जी कहते हैं-''यदि तन्त्र और योग के इतिहास की दृष्टि से विचार किया जाए तो अलग ही धारणा उभरकर सामने आती है। भाषा के साथ ही भाव के समानान्तर साधना और सिद्धि की जो मान्यताएँ सामने आती है, उसे हम 'नाथधारा' ही कहना उचित समझते हैं।'' (पृष्ठ- 262)

अगर 'पथ' को साधारण अर्थ में लें तो 'रास्ता' 'मार्ग' होता है, जिस पर चलकर व्यक्ति अपने गन्तव्य तक पहुँचता है। वहीं 'धारा' शब्द लगातार बहने वाली- जैसे नदी का बहाव, जो मार्ग में आए किसी भी बाधा के बीच भी सरलता से बहती रहती है; दूसरा निरन्तर गिरने का क्रम। जैसे- धारा रूप में वर्षा होना, और समान रूप से प्रकृति के छोटे-बड़े सभी अवयवों को बिना भेदभाव के सींचना, उन्हें पोषित करना होता है। इस अर्थ में यदि देखें तो 'नाथतत्त्व' ने जिस प्रकार से जन-जन में प्रवाहित हो उन्हें पोषित किया है, तो 'जुगनू जी' द्वारा 'नाथधारा' शब्द से अभिहित करना उचित ही जान पड़ता है।

इस पुस्तक की एक बड़ी प्रतिष्ठा है गोरख नाथ के अनुसार नाथों के आचार शास्त्र पर विमर्श। गोरख के नाम से सैकड़ों शबद लोक कंठ पर मौजूद है। शाबर मन्त्रों की इनका पाठ है और जाप के रूप में उपांशु जप के विषय हैं। ॐ गुरुजी से आरम्भ होने वाले शब्द की एक बड़ी प्रतिष्ठा है कि वे अनंत करोड़ सिद्धों में गोरख को गादी पति सिद्ध करते हैं। गर्भ दीक्षा से लेकर समाधि तक गावंत्री रूप में ये शब्द गुरु से शिष्य को मिलते रहे इसी कारण इनको लिखा नहीं गया। ये भी एक कारण है कि लोक जिन शब्दों को गोरख कृत मानता है गोरख बानी में वे नहीं मिलते! काग़ज़ पर लिखे और कंठ पर धारण किए शब्द और शबद का भेद भी यहां स्पष्ट होता है। इसी पुस्तक में गोरख नाथ के पदों का पाठ रज्जब कृत सर्बंगी के आधार पर दिया गया है जो अधिक प्रामाणिक लगता है।

जुगनू जी का यह कहना कि ''इसमें लोकपक्ष पर विशेष विमर्श है और अनेक बातें पहली बार सामने आएँगी।'' (पृष्ठ IX) न तो अतिशंयोक्ति है और न ही आत्मश्लाघा। आप पुस्तक को पढ़ते हुए यह स्वयं महसूस करेंगे कि आप इनमें बहुत-सी बातें पहली बार पढ़ रहे हैं। इन सभी को एकत्र कर पुस्तकाकार देना कितना श्रम साध्य रहा होगा। अपनी कठिनाई को व्यक्त करते हुए जुगनू जी कहते हैं- ''किसी विषय के उदगम को खोजना भारतीय संस्कृति में वैज्ञानिक खोज से भी अधिक कठिन है क्योंकि जिससे सम्बद्ध उसको माना जाता है, खोजने पर वह अलग विषय के साथ मिलता है। (पृष्ठ-12)

प्रस्तुत पुस्तक में विभिन्न संग्रहालयों से नाथों से संबंधित रंगीन चित्रों का संकलन एवं शोध केन्द्र संस्थानों से गुरू गोरखनाथ व उनसे जुड़े ग्रन्थों की पाण्डुलिपियों के चित्र और सहायक ग्रन्थों की सूची शोधार्थियों के लिए अमूल्य नीधियाँ हैं। इसमें अनेक पद्यों को, अनेक रागों में गेयता को भी रेखांकित किया है जिसमें ज्यादातर पद्य राग: रामकली और राग: आसावरी में दिखाई पड़ते हैं। गाँव-गाँव गोरख, नगर-नगर नाथ पुस्तक में- लोक-श्लोकव्यापि संस्कृति और नाथयोग, तपोधनी तपस्वी, साधना और सिद्धियाँ, नाथ और गोरखनाथ, जाप-शब्दानुशासन के जनक गोरखनाथ, गोरखनाथ का बहुमुत लोग प्रभाव, लोकस्मृतियों में गोरख और नाथों का वर्चस्व, अनातीत गोरखनाथ और उपसंहार द्वारा गोरखनाथ का बहुश्रृत लोकप्रभाव और अनातीत गोरखनाथ विषय कई बड़े प्रमाण के साथ प्रस्तुत किया गया है। परिशिष्ट के रूप में गोरखनाथ ग्रन्थावली के संस्कृत भाषा में लिखित मूल- परिशिष्ट- 1. हठयोग, 2. गोरखपद्धतिः, 3. गोरक्षसंहिता, 4. गोरओपनिषद्, 5. अमरौधशासनम्, 6. अमरौधप्रबोधः, 7. योगमार्त्तण्ड, 8. गोरक्षशतकम्, 9. योगबीजम् दिया गया है। इस तरह से यह किताब गोरख बीजक भी हो गया है।

इस पुस्तक में कमी क्या कहा जाय? तो आप कमी कहें या गुण- पुस्तक धैर्य के साथ पढ़े जाने की माँग करती है। धीरे-धीरे जैसे-जैसे आप पढ़ते जाएगें वैसे-वैसे शास्त्र और लोक में संबंधो को देखने-समझने की एक नई दृष्टि पायेंगे कि ये जड़ रूप नहीं बल्कि पल्लव रूप है!

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की खुराक में खर्च क्यों न करें!

कलासमय

प्रबंध संपादक

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com

डॉ. कपिल तिवारी को अवन्ती बाई साहित्य सम्मान

उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान ने वर्ष 2019 के पुरस्कारों की घोषणा की है जिसमें भोपाल के पद्मश्री से सम्मानित डॉ. कपिल तिवारी जी को 'अवंतीबाई साहित्य सम्मान' और श्री रामेश्वर मिश्र पंकज जी को 'महात्मा गांधी साहित्य सम्मान' प्रदान किया गया है। दोनों विभूतियों को चार-चार लाख रुपये दिए जाएंगे। लखनऊ के वरिष्ठ पत्रकार व लेखक श्री दयानंद पांडेय जी को 'लोहिया साहित्य सम्मान', डॉ. विनय षडंगी राजाराम को 'साहित्य भूषण सम्मान' दिया जाना स्वागत योग्य है। आप सभी ने हिंदी की अतुलनीय सेवा की है। सभी पुरस्कृत हिन्दी सेवकों को हार्दिक शुभकामनाएं एवं बधाई।

डॉ. जुगनू को गुरु गोरखनाथ सम्मान

उदयपुर। डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू को आदिकालीन साहित्य में योगदान के लिए हिन्दुस्तान एकेडमी, प्रयागराज की ओर से गुरु गोरखनाथ शिखर सम्मान प्रदान किया जायेगा। एकेडमी के अध्यक्ष डॉ. उदयप्रतापसिंह के अनुसार सम्मान के तहत 5 लाख रूपये की राशि भी प्रदान की जायेगी। उल्लेखनीय है कि
डॉ. जुगनू ने भारतीय लिपियों, संस्कृत, प्राकृत और पाली सहित कई क्षेत्रीय भाषाओं , आदिकालीन हिन्दी और मध्यकालीन कवियों के साहित्य का भी सम्पादन किया है। राष्ट्रपति की ओर से श्रेष्ठ शिक्षक से नवाजे जाने के साथ ही डॉ. जुगनू को वास्तु, ज्योतिष सहित कई क्षेत्रों में विशिष्ट योगदान के लिए राजस्थान, गुजरात और पंजाब के राज्यपाल भी सम्मानित कर चुके हैं।

अन्य महत्वपूर्ण सम्मान :

इसके अलावा 5 लाख रूपये का गोस्वामी तुलसीदास सम्मान महेन्द्रप्रतापसिंह को, 4 लाख का संत कबीरदास सम्मान रामकिशोर शर्मा को, दो-दो लाख का भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सम्मान डॉ. रामबोध पाण्डेय तथा महावीरप्रसार द्विवेदी सम्मान डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी को, एक-एक लाख का महादेवी वर्मा सम्मान डॉ. रतनकुमारी वर्मा, फिराक गोरखपुरी सम्मान डॉ. अंजनासिंह सेंगर, भिखारी ठाकुर भोजपुरी सम्मान जयशंकर प्रसाद द्विवेदी, बनादास अवधी सम्मान, पवनकुमार सिंह, कुंभनदास ब्रजभाषा सम्मान अंजीव अंजुम तथा ईसुरी बुन्देली सम्मान डॉ. दया दीक्षित को दिया जायगा।

इसी प्रकार ग्यारह हजार के दो हिन्दुस्तानी एकेडमी युवा सम्मान काव्य विधा में शुभम श्रीवास्तव 'ओम' तथा कथा विधा में अनिलकुमार 'निलय' को प्रदान किया जायगा।

आजादी का अमृत महोत्सव के अंतर्गत नृत्य उत्सव का आयोजन सम्पन्न

नई दिल्ली. 'आजादी का अमृत महोत्सव ' के तहत संगीत नाटक अकादमी संस्कृति मंत्रालय नई दिल्ली की घटक इकाई कथक केंद्र मे 19 मार्च से 28 मार्च तक दस दिवसीय नृत्य उत्सव का भव्य आयोजन किया गया। देश के जाने माने कलाकारों ने इस समारोह मे अपनी कथक प्रस्तुतियाँ दी. कथक रत्न डॉ. शाम्भवी शुक्ला मिश्रा की शानदार प्रस्तुति से समारोह का समापन हुआ। सागर बुंदेलखण्ड पर्यटन ब्राण्ड एम्बेसेडर डॉ शाम्भवी के नृत्य ने दर्शकों का मन जीत लिया। विदुषी एवं कला लेखिका डॉ. शाम्भवी ने कथक नृत्य में कई नवाचार किए हैं। इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कथक नृत्य में स्वयं द्वारा बनाई गई कल्कि अवतार की गत-निकास, पांच जातियों की तिहाई एवं बुंदेलखंड के कवियो की रचनाओं को सुन्दरता के साथ प्रस्तुत किया। प्रस्तुति का सशक्त आरम्भ दुर्गा स्तुति से प्रभावपूर्ण रहा। लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत का यह समन्वय नवीनता, आंचलिकता और भाव से परिपूर्ण रहा। संगीत संयोजन श्री बृजेश मिश्रा, तबला संगत श्री शुभ महाराज, बाँसुरी श्री किरण एवं सारंगी पर श्री ललित सिसोदिया द्वारा सधी संगत प्रदान की गई। कार्यक्रम के अंत में कथक केंद्र के निदेशक ने पुष्प गुच्छ से सभी कलाकारों का अभिनंदन किया।

श्री नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

मध्यप्रदेश शासन

श्री शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

आत्मनिर्भर भारत के लिये आत्मनिर्भर मध्यप्रदेश

आत्मनिर्भरता के स्तंभ

भौतिक अधोसंरचना

- अटल प्रोग्रेस-वे और नर्मदा एक्सप्रेस-वे के साथ-साथ औद्योगिक क्षेत्र का विकास।
- सभी ग्रामीण घरों में 1.03 करोड़ घरेलू नल कनेक्शन की परियोजना।
- 60 सिंचाई परियोजनाओं का निर्माण, इससे 60 लाख हेक्टेयर तक सिंचाई का विस्तार प्रस्तावित।
- 24 प्रमुख सड़कों का नवीनीकरण।
- 378 शहरों में 3 लाख आवासों का निर्माण।
- टोल प्लाजाओं का ऑटोमेशन।
- 2642 कि.मी. की ग्रामीण सड़कों का निर्माण।
- मल्टी मॉडल लॉजिस्टिक पार्क की स्थापना।
- रुपये 4000 करोड़ से 105 रेलवे ओव्हरब्रिज का निर्माण।
- 750 मेगावॉट की देश की सबसे बड़ी रीवा अल्ट्रा मेगा सौर परियोजना शुरु।

सुशासन

- नागरिकों के लिये 'Ease of Living' के तहत प्रक्रियाओं का सरलीकरण।
- नागरिकों के लिये एकल डेटाबेस के माध्यम से सेवा प्रदाय।
- सार्वजनिक सेवा के लिये मोबाइल आधारित सुविधा प्रदाय।
- ग्रामों की आबादी भूमि का ड्रोन सर्वे तथा अभिलेख प्रदाय।
- कृषि भूमि के सटीक सर्वेक्षण हेतु नई तकनीक का उपयोग।
- डीम्ड अप्रूवल की सुविधा। समय-सीमा में सेवा प्राप्त नहीं होने पर स्वत: कम्प्यूटर से सेवा प्रदाय।

स्वास्थ्य एवं शिक्षा

- सी.एम. राइज़ योजना में 9,200 सर्व सुविधा सम्पन्न शासकीय विद्यालयों की स्थापना।
- सभी इंजीनियरिंग तथा ITIs में कॅरियर तथा प्लेसमेंट सेल की स्थापना।
- 16 सौ अत्याधुनिक प्रसव केन्द्रों की स्थापना।
- 5100 स्वास्थ्य केन्द्रों का उन्नयन एवं आधुनिकीकरण।
- प्रतिभाशाली छात्र प्रोत्साहन योजना में 40 हजार से अधिक विद्यार्थियों को लैपटॉप खरीदने के लिए 101 करोड़ रुपये की सहायता।
- कोविड के दौरान स्वास्थ्य सुविधाओं एवं जाँच केन्द्रों का विस्तारीकरण।

अर्थव्यवस्था एवं रोजगार

- 'एक ज़िला-एक उत्पाद' के तहत खेती क्षेत्र के पास ही खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना।
- प्रदेश में 200 क्षमता के नये उद्यमियों के लिए कार्यस्थल की इंदौर तथा भोपाल में स्थापना।
- 800 दुग्ध सहकारी समितियों का गठन।
- 'नॉलेज पोर्टल' और 'युवा संवाद' के माध्यम से पशुपालन क्षेत्र में युवाओं को आकर्षित करना।
- औद्योगिक विकास हेतु भूमि बैंक नीति।
- भोपाल में 320 करोड़ रुपये लागत के 'ग्लोबल स्किल पार्क' की स्थापना।
- राष्ट्रीय उद्यानों में 'बफर में सफर' योजना के माध्यम से स्थानीय लोगों को रोज़गार।
- 3 लाख पथ विक्रेताओं को स्वयं के रोज़गार हेतु रुपये 300 करोड़ का ब्याज मुक्त ऋण।
- युवाओं एवं महिलाओं को पर्यटन संबंधी गतिविधियों का प्रशिक्षण एवं रोज़गार।

शिवराज सरकार - भरोसा बरकरार

D-19023/21

"मोदी जी के सपने को, पूरा करता मध्यप्रदेश"

मध्यप्रदेश शासन

श्री नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

श्री शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

जनसेवा का एक साल

"प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के 'आपदा में अवसर' के मंत्र पर चलते हुए हम उनके 'आत्मनिर्भर भारत' के सपने को पूरा करने के लिये आत्मनिर्भर मध्यप्रदेश का निर्माण कर रहे हैं।"

- शिवराज सिंह चौहान

प्रमुख कार्य

- **विभिन्न योजनाओं में एक लाख 18 हजार करोड़ रुपये की सहायता सीधे प्रदेशवासियों के खातों में।**
- भू-माफिया के कब्जे से 9 हजार करोड़ रुपये की तीन हजार हेक्टेयर से अधिक की शासकीय जमीन मुक्त।
- कोरोना काल में भी 129 लाख मी. टन से अधिक गेहूं की खरीदी कर 25 हजार करोड़ रुपये किसानों के खातों में।
- कोरोना संक्रमितों की पूरी तरह मुफ्त जाँच एवं इलाज। कोरोना को रोकने के लिए बड़े स्तर पर इलाज की सुविधाएं और जरूरतमंद लोगों के लिए खाना, दवा और आर्थिक मदद के इंतजाम।
- प्रदेश के इतिहास में मनरेगा योजनांतर्गत सर्वाधिक 30 करोड़ से अधिक मानव दिवसों का सृजन।
- 2000 ग्रामों में शत्-प्रतिशत घरेलू नल कनेक्शन का प्रदाय।
- मोबाइल पर खसरा/खतौनी/नक्शे की नकल, आय/मूल निवास प्रमाण-पत्र प्रदान करने की सुविधा।
- केन-बेतवा नदी जोड़ो योजना का अनुबंध सम्पन्न।

नई योजनाएं

- मुख्यमंत्री किसान कल्याण योजना
- मुख्यमंत्री ग्रामीण पथ विक्रेता ऋण योजना
- सी.एम. राइज योजना
- मुख्यमंत्री कृषक फसल उपार्जन सहायता योजना
- मुख्यमंत्री स्वरोजगार योजना
- मुख्यमंत्री उद्यम क्रांति योजना
- पुलिसकर्मियों के लिए कर्मवीर योद्धा पदक योजना
- मुख्यमंत्री कोरोना योद्धा कल्याण योजना
- मुख्यमंत्री प्रवासी मजदूर सहायता योजना।

योजनाएं फिर शुरू

- मुख्यमंत्री जनकल्याण (संबल) योजना
- मुख्यमंत्री कन्यादान/निकाह योजना
- दीनदयाल अंत्योदय रसोई योजना
- किसानों को शून्य ब्याज दर पर ऋण योजना
- मेधावी विद्यार्थियों को लैपटॉप देने की प्रतिभा प्रोत्साहन योजना
- पंच-परमेश्वर योजना
- मध्यप्रदेश जन अभियान परिषद्।

कानूनों और नियमों में बड़े बदलाव

- किसानों को फसल बेचने के बेहतर विकल्प देने के लिये मंडी कानूनों में सुधार
- मध्यप्रदेश धर्म स्वातंत्र्य अधिनियम-2020
- साहूकारों से मुक्ति दिलाने के लिये अनुसूचित जनजाति ऋण विमुक्ति अधिनियम-2020
- शहरी भूमियों के बेहतर उपयोग के लिये नगर तथा ग्राम निवेश नियम, 2012 में संशोधन।

देश में अग्रणी

- गेहूं खरीदी में देश में पहला स्थान
- एग्रीकल्चर इंफ्रास्ट्रक्चर फंड योजना में पहले स्थान पर
- प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना में पहला स्थान
- मनरेगा योजना की बजट वृद्धि में दूसरा स्थान
- प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना में पहला स्थान
- प्रधानमंत्री स्व-निधि योजना के तहत पथ विक्रेताओं को ऋण देने में पहला स्थान
- स्मार्ट सिटी रैंकिंग में दूसरा स्थान
- जल जीवन मिशन में 18 लाख नल कनेक्शन देकर दूसरा स्थान
- सुगम व्यवसाय रैंकिंग में चौथा स्थान

मास्क लगाएं, जीवन बचाएं

शिवराज सरकार - भरोसा बरकरार

D-19023/21

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016 से प्रकाशित। संपादक-भँवरलाल श्रीवास